समर्पणम्

- लौकिक व्यवहार में रहने के बावजूद भी अलौकिक व्यवहार का पालन करनेवाले

  महावीर प्रभु को...

- करुणाभावना के परमोच्च स्तर को छूने वाले

  महावीर प्रभु को...

- रागीओको राग के कीचड में से निकालकर विरागमें स्थापित करनेवाले

  महावीर प्रभु को...

- अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गोको सहन करके जगत के आदर्शभूत बननेवाले

  महावीर प्रभु को...

- कौन सी भी परिस्थितिमें माध्यस्थ भाव को टिकानेवाले

  महावीर प्रभु को...

- 'वीरजिणंद जगत उपकारी' यह लफ्जों को गाने के लिए मजबूर करनेवाले

  महावीर प्रभु को...

यह पुस्तक मैं सादर अर्पण करता हूँ...

गुणहंस विजयजी म.सा.

।। नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ।।

अहो वीरम् ....
महावीरम् ....

(आपको सोचन में मजबूर कर दे वैसी भगवान महावीर की अनकही साधना)

:: लेखक ::

सिद्धान्तमहोदधि, सच्चारित्रचूडामणि,

स्व. पूज्यपाद आ. भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज के

शिष्य स्व. पूज्यपाद पं.प्रवर श्री चंद्रशेखर विजयजी म. साहेब के शिष्य

मुनि गुणहंस विजय म. साहेब

:: प्रकाशक ::

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

102-ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स, आनंदनगर पोस्ट ओफिस के सामने,

भठ्ठा, पालडी, अहमदाबाद-7. टेलि. 26605355

※ :: दिव्याशिष :: ※
सिद्धान्तमहोदधि, सच्चारित्रचूडामणि,
स्व. पूज्यपाद आ. भगवंत श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज के
विनेय स्व. पूज्यपाद पं.प्रवर श्री चंद्रशेखर विजयजी म. साहेब

※ कल्पनासृष्टि ※
युगप्रधानाचार्यसम पू.पं. श्री चन्द्रशेखर विजयजी महाराज साहेब

※ :: लेखक :: ※

मु. गुणहंस वि.

※ :: सौजन्य :: ※
* साधु साध्वीजी भगवंत के लिए ज्ञाननिधि से *
प.पू. मुनिराज श्री गुणहंसविजयजी म.सा. के चेन्नई चातुर्मास के उपलक्ष में
श्रीमती द्राक्षाबाई एस. जावंतराजजी जैन
फर्म : मोती सिल्वर पैलेस, चेन्नई-घाणेराव

:: प्राप्तिस्थान ::
हितेशभाई गाला
B-17, तृप्ति सोसायटी, हनुमान रोड, विले पार्ले (पूर्व), मुंबई-400 057. मो.98209 28457
आशिषभाई महेता
101, रोयल हेरीटेज, पहला माला, सरगम शोपींग सेन्टर के पास, उमरा-सुरत. (गुज.) मो.93745 12259
दीपेशभाई दीक्षित
B-2, अमर एपार्टमेन्ट, डीवाइन लाईफ स्कूल के सामने, बेरेज रोड,
वासणा, अहमदाबाद. मो. 094286 08279

प्रथम संस्करण : ३००० प्रति – महावीर जन्म कल्याणक २०७२

प्रकाशक : कमल प्रकाशन ट्रस्ट
102-ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स, आनंदनगर पोस्ट ओफिस के सामने, भठ्ठा, पालडी,
अहमदाबाद - 7. टेलि. 26605355

मूल्य : रू.१३/-

:: Typesetting By ::
पार्श्व ओफसेट - क्रिएटीव प्रकाशन
'विनय', 2/5, जागनाथ कोर्नर, नंदवाणा ब्राह्मण बोर्डींग के पास,
डॉ. याज्ञिक रोड, राजकोट - 360 001. मो. 94269 72609

:: Printed By ::
जगावत प्रिन्टर्स
39, नाट्टु पिल्लैयार कोईल स्ट्रीट, चेन्नई-1. मो. 9884814905 / 14901

।। नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ।।

:: प्रस्तावना ::

अहो वीरम् .... महावीरम् ....

अरिहंत परमात्मा के गुणों के वर्णन करती स्तुतियाँ यानि अरिहंत वंदनावली !

स्वदोषों की निंदा-गर्हा स्वरूप स्तुतियाँ यानि रत्नाकर पच्चीसी!

परमात्मा आदिनाथ की स्तुतियाँ यानि **ते धन्ना जेहिं दिट्ठो सि** (तब आपको....)

मूल कोई प्राकृत या संस्कृत ग्रंथों के आधार से इन स्तुतिओं की रचना करने मे आई हैं। और उसके बाद वर्तमान में तो अनेक कविहृदयो ने स्वयं की रूचि के अनुसार उन-उन प्रभु की स्तुतियाँ रची हैं, जो लोकभोग्य भी बन रही हैं।

श्री आचारांग सूत्र आदि ग्रंथों में परमात्मा महावीर की साधना का जो वर्णन हैं, उसे नजर के सामने रखकर और स्वयं की कल्पनाशक्ति को विकस्वर कर एक महात्मा ने प्रभु वीर पर सुंदर मजा की स्तुतियाँ बनायी हैं।

हमारे पू. गुरूदेव के संसारी बहन म.सा. महानंदाश्रीजी और उनकी शिष्या अहमदाबाद में स्वयं के हिसाब से तैयार किये हुए बहनों द्वारा संघ की श्राविकाओं को जीवविचार वगैरह पढाने का कार्य करते हैं। उन्होंने मुझे बताया था कि यें स्तुतियाँ अत्यंत अद्भुत है, हम हर शिबिर के पूर्व में ये स्तुतियाँ हमेशा बोलते ही है, आनेवाले इतने भावविभोर बन जाते हैं कि अब तक एक भी शिबिर ऐसी नहीं हुई कि जिसमें शिबिर के बाद किसी ने भी इन स्तुतियों की माँग न की हों।

यह जानकर मुझे लगा कि फिर ये स्तुतियाँ संयमीओं को विरतिदूत द्वारा पहुँचाई जाए। और ऐसे भी श्रमण भगवान महावीरदेव हमारे चरमतीर्थपति होने से असीम उपकारी हैं। इसलिए उनकी सुंदर से सुंदर स्तुतियाँ हम सभी को कंठस्थ हो, यह भी जरूरी तो हैं ना?

आदिनाथदादा की स्तुतियाँ यदि आती है, तो वह अच्छा ही हैं,

शत्रुंजयतीर्थाधिराज की स्तुतियाँ आती है, तो वह अच्छा ही हैं,

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ दादा की स्तुतियाँ आपको आती है, तो वह अच्छा ही हैं,

हमारे पूज्य गुरूवर्यों की स्तुतियां यदि आती हैं, तो वह अच्छा ही हैं,

पर जिनके शासन में हम जी रहे है, जिनके शासन की हम अनुभूति कर रहे हैं, जिनकी साधना हमारा आदर्श हैं... उन प्रभु वीर की स्तुतियाँ आती हो तो वह तो बहुत-बहुत अच्छा है ना? और वह न आती हो तो ? ....

+ हर एक स्तुति का अंतिम चरण **त्यारे तमोने ....**

+ स्तुतिओं का आधार आचारांगआदि और कल्पनाशक्ति।

ध्यान में रखना,

यह सब हैं गन्ने के टुक्डे।

सिर्फ मुँह में रखने से मिठास नहीं आएगी।

परंतु उसे चबाना पडेगा, बराबर चबाओ ..... फिर उसमें से मीठा-मधुरा रस निकलेगा।

सभी को विनंती है कि अनुकूलता के अनुसार स्तुतियों के आधार से प्रभु का स्मरण करने से वीरमय (प्रभुवीर जैसे) बनने का भगीरथ (दुष्कर) पुरूषार्थ करें।

मु. गुणहंस वि.

सिद्धार्थराजाना महेलमां पारणे पोढाडीने,
हेते हिलोळे मात त्रिशला हरखे तुजने जोइने,
निजमातना आनंद काजे मधुर स्मित करता तमे ....
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे...... (१)

जन्मोत्सव पूर्ण करके इंद्रमहाराजा तो प्रभु आपको फिर से झुले में (पारणे में) रखकर चले गए। माता त्रिशला की अवस्वापिनी (निंद) निंद्रा दूर हो गई। तीन लोक के नाथ आपके ऊपर कायदेसर हक माँ त्रिशला का हैं। उनकी अनुमति के बिना कोई आपको स्पर्श भी नहीं कर सकता और देख भी नहीं सकता।

हम तो प्रभु ! आज हमारे सामान्य प्रतिभावाले बच्चों के पीछे पागल होती माँओं को देखते ही हैं, तब आपकी माँ को याद करके ईर्ष्यासहित का आनंद अनुभव करते हैं कि माँ त्रिशला को तो आपको देखकर कितना आनंद होता होगा। भले वह सांसारिक आनंद हैं, स्नेहराग है, लोकोत्तर शासन में वह हेय (छोडने जैसा) हैं.... फिर भी वह सब अब एक तरफ रखकर सिर्फ त्रिशला माता के आनंद की कल्पना ही करें, तो भी हम प्रफुल्लित हो जाते हैं।

आप तो पौढे हो (सोये हो) झुले में .....
उसकी डोरी है त्रिशला के हाथमें.....
हैं बिलकुल एकांत.....
त्रिशला आपको ही देख रही है घूर-घूर के....
तब आपकी भी नजर पडी त्रिशला के उपर......

याद आ गए आपको वह गर्भ के दिन ! जब मात्र आपके स्थिर होने के कारण माँ बहुत रोई थी, दुखी बनी थी, मृतःप्राय बनी थी और अंत में माँ को प्रसन्न करने के लिए करूणा से आपने जरा हलन-चलन किया था। माँ पागल सी हो गई थी।

आपको याद आ गया कि माँ को खुश करना वह भी मेरा कर्तव्य हैं।

और त्रिशला के सामने देखकर आप एकदम हँस पडे, आपका हास्य मीठा था।

अहो भगवान !

अंग्रेजी में कहावत है कि 'A Child is the father of god....' बालक भगवान के पिता है, पर यहाँ आपके लिए मैं कौन से शब्दों का प्रयोग करूँ?

आप स्वयं ही भगवान हो!
और आप स्वयं बालक होने के कारण स्वयं भगवान के पिता थे!
उसमें आप मोहक स्मित करो, तब तो आपको कौन सी उपमा दी जाए?
इस हास्य में सिर्फ स्नेहराग नहीं था, परंतु
औचित्य का पालन धडक रहा था....
माँ के प्रति करूणा रीस रही थी .....

इसीलिए आज भी इच्छा होती है कि हमें वह हास्य देखने को मिला होता तो? मां त्रिशला बनने का सौभाग्य हमें मिला होता तो?

माँ त्रिशला की कोई नजदीक की सखी या नजदीक की दासी बनने का सौभाग्य हमें मिला होता तो?

चांदनीना तेजमां चमकतां तारा मुखने,
प्रहरो सुधी जोवा छतां पण थाक नहीं तुज मात ने।
पा - पा पगली भरता तमे ज्यारे प्रभु ! निज महेलमां ....
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे..... (२)

एक तरफ टिमटिमाते दीपक का हल्का-हल्का (निस्तेज) प्रकाश!

दूसरी-तरफ झरोखे में से आती पूनम की चांदनी का शीत प्रकाश!

आपके स्वयं तेजस्वी मुख को ज्यादा तेजस्वी बना रहा था...

बस, देखती ही रहूँ, देखती ही रहूँ ..... ऐंसा हो रहा था माँ को!... मुझे तो लगता है प्रभु! कि आपने माँ को सोने ही नहीं दिया होगा।

भोगी पूरी रात भोग में निकालता है,

योगी पूरी रात योग में निकालता है,

तो मां पूरी रात आपके जैसे बालक के लिए जाग नहीं सकती ?

हा ! शायद थकान लगे, ऐंसा हमें हो। परंतु आपकी मौजूदगी का प्रभाव ही ऐसा होगा कि मां थकान शब्द ही भूल गई होगी।

यह तो बात की आपके बचपन के दिनों की !

एक दिन आप घुटनों के बल चलते-चलते कभी-कभी पा-पा पगले भी भरते होंगे।

उस समय मौजूद होंगे सिद्धार्थ और त्रिशला !

बहन सुदर्शना और भाई नंदीवर्धन !

सभी खुश हो गए होंगे,

चारों ओर समाचार भेजने में आए होंगे कि वर्धमानकुमार अपने पैरों से चलने लग गए'। राजमहेल में तो मानों कि बडा उत्सव मनाया गया होगा।

प्रभु !

वह संसार-स्वजन तो स्नेहराग से आपके चरणों को (पगलोकों) देखकर आनंद मना रहे होंगे .... अगर हम वहाँ होते तो, तो हमें ऐसा ही लगता कि,

यह तो प्रभु के मुक्ति की ओर के पावन पगले हैं।

यह तो प्रभु के धरती को पवित्र करने के लिए पावन पगले है ! बडे कदम भराए है। यह तो मोहराजा अभी प्रभु को पकड ही नहीं सकेंगे, इसीलिए प्रभु के द्वारा हिरन के समान नहीं, नहीं। प्रभु कोई मोहराजा से गभराकर भागेंगे थोडीना।

यह तो मोहराजा रूप चालाक गीदड (सियाल) को फाडने के लिए दृढ संकल्प से

आगे बढ रहे प्रभु के पावन पगले हैं!

माँ त्रिशला को शायद याद नहीं आया होगा, परंतु यदि मैं होता तो, तो किसी कपडें पर आपके कंकु के पगले करवा दिये होते, जो सालों के बाद भी आपके शासन के आराधकों के लिए परम आस्था का स्थान बनके रहता।

परंतु ऐसा हमारा भाग्य नहीं हैं।

उपसर्गोने सहेवाने माटे शक्ति तुजने सांपडे,
हे वर्धमान! ते काजे विनवुं, हुं कहुं ते खाई ले,
निजगोदमां बेसाडी त्रिशला हेतथी खवडावती,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे.... (३)

प्रभु ! २५ वें भवमें ११ लाख से भी ज्यादा मासक्षमण करके आपने आहारसंज्ञा को तो लगभग मार ही डाला था। तो अभी अंतिम भव में आपको खाने-पीने की आसक्ति तो कहाँ से होगी ?

परंतु त्रिशला तो मां है! उनके तो कितने ही अरमान जागेंगे कि मैं मेरे बेटे को खिलाऊं! अच्छे से अच्छा खिलाऊ!

अभी यह है दोनो उल्टी गंगा।

एक को तो अच्छा-अच्छा नहीं, कुछ भी खाने की इच्छा नहीं होती।

दूसरी (मां को) अच्छे में अच्छा खिलाने की तीव्रतम इच्छा हैं।

कैंसे समन्वय होता?

आखिर मां होंशियार हैं!

यदि वर्धमान! आपको दीक्षा लेनी है ? साधना करनी है? तो उसमें तो कितने ही उपसर्ग-परिषह आएँगे। वह सब सहन करना नहीं हैं आपको? उन सभी के लिए शरीर में शक्ति तो होनी चाहिए। शरीर कमजोर रहेगा, तो मन भी कमजोर बनेगा, और फिर आपकी साधना में नुकसान पहुँचेगा।

बोलो, यह सब आपको मंजूर है?

इससे अच्छा मैं जैसा बोलती हूँ, वैसा ही आप कीजिये। मुझे संसार का बहुत अनुभव है। पौष्टिक वस्तु खाकर आपका शरीर मजबूत बन जाए, फिर पीछे के दीक्षा जीवन में आपको कोई भी मुश्किल नहीं आएगी।

माँ बोलती थी.... वर्धमान! आप सुन लेते थे.... आप तो होंशियार थे, माँ की चतुराई को समझते थे, सामने दो-चार जवाब देने की भी आपके पास ताकत थी।

परंतु आपके पास चतुराई के साथ-साथ औचित्यसेवन की भी समझ थी। इतने से ही माँ खुश है, तो मुझे उसमें कोई विशेष नुकसान नहीं है, ऐसा विचार कर आप बोल देते थे, 'अच्छा-अच्छा आप जो खिलाोगी मैं वही खाऊंगा।'

माँ समझती थी कि 'मैने बेटे को फुसला दिया।'

बिचारी वह भोली मां आपकी लोकोत्तर परिणति को क्या समझे?

उसे तो स्नेहराग के सरोवर में डुबकियाँ मारने में ही दिलचस्पी थी।

बिठाती आपको गोद में और बाद में मनपसंद वस्तुएँ आपको खिलाती!

आपके सिर पर वात्सल्य से हाथ घुमाती।

प्रभु! वह सब मोहराजा की करामत है, फिर भी आप अलिप्त रह कर यह सब शांत भाव से सहते थे।

उस समय आपके मुंह पर खाने का नहीं, पर औचित्यपालन का संतोष होगा!

उस समय आप स्नेहराग से लथपथ नहीं, पर वैराग्य से सार्द्र होंगे...।

माँ त्रिशला आपको पहचाने या नहीं पहचानें....,

मैं यदि वहां होता तो, तो मैं आपके सभी मन के भावों को पहचान गया होता, आखिर मेरे पास तो आपके दिए हुए शास्त्रज्ञान रूपी आपको पहचानने के लिए चश्मे है ना?

'भले त्रण जगतनो नाथ! तुं पण बालुडो छे माहरो,
स्वार्थे भर्या संसारमां तुज विण नथी कोई आशरो,'
एम हेतथी तुज मस्तके त्रिशला प्रसारे हाथने,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (४)

माँ त्रिशला के पास सब कुछ था।

पति थे सिद्धार्थ महाराजा के जैसा!

बेटा-बेटी थे, नंदीवर्धन और सुदर्शना के जैसे!

रहने के लिए था राजमहेल!

नौकर-चाकर, खाना-पीना ... सब कुछ!

और साथ में जैनधर्म भी था, सच्ची समझ भी थी!

इसीलिए ही 'संसार स्वार्थ प्रचुर है' यह बात को उन्हेंने जीवन में आत्मसात्. किया था।

प्रभु! आपके प्रति माँ का वात्सल्य जरूर घुटाया होगा, परंतु उसमें एक भावना यह भी सम्मिलित हुई होगी 'मेरे लिए तो यह तीर्थंकर की आत्मा, वही आशरा है। दूसरे सब तो रास्ते में मिले हुए मुसाफर के जैसे है।'

माँ आपको बुलाती पासमें उस समय जब संसार की असारता से मन भावित होता था!

माँ आपको बिठाती गोदमें उस समय जब संसार भ्रमण का डर उनको कंपा देता था!

और बोलती होगी माँ त्रिशला,

बेटा वर्धमान ! क्या आपको पता है कि आप मालिक हो तीन लोक के प्राणीयों के....,

परंतु मुझे क्या मतलब इन लोगों से ? मेरे लिए तो आप ही मेरे प्यारे हो ना?

मुझे आपसे एक ही बिनती है कि बेटा! आप तीन जगत के नाथ बनो या ना

बनो, पर मेरे तो बनना ही।'

जैन धर्म को पहचाना है, स्वीकारा भी है .... मृत्यु के बाद मेरा आपके साथ कोई भी संबंध नहीं हैं, यह भी मैं समझती हूँ। इसीलिए आपके पास याचना कर रही हूं की मेरी रक्षा करना, मेरा परलोक सुधारना .....

आपके बिना मुझे परलोक के लिए अन्य किसी पर भी भरोसा नहीं है।

आपके सिर पर हाथ घुमाती है और गदगद स्वर से बिनती करती है....

कैसी माँ !

आपको बेटा (पुत्र) भी माने और पूज्य भी माने....

आपको आशिष भी दे और आपके आशिष की झंखना भी रखे....

वह माँ भी थी और प्रभु पार्श्व के शासन की श्राविका भी थी....

वह स्नेहवाली भी थी और वैराग्यवाली भी थी....

वह कुटुंबवाली भी थी और अनराधारताकी प्रतीति करनेवाली भी थी....

वह आपकी रक्षक भी थी और आपसे रक्ष्य भी थी....

कमनसीब तो हमारा है क्योंकि हमारा जन्म २५०० वर्ष के बाद हुआ, और इसीलिए ऐसे अनमोल दृश्य देखने का अवसर हम खो बैठे। मात्र कल्पना से खुशी को प्राप्त करना ही रहा हमारे भाग्य में.... परंतु सपने के लडडु से कितनी भूख दूर होती है? परंतु कुछ नहीं, मेरी तीव्र भावना मुझे अगले भव में साक्षात् ऐसे ही कोई दृश्यों का दर्शन करानेवाली होगी ऐसी मुझे श्रद्धा हैं।

साकर थकी पण अधिक मीठा वचन-उच्चारक तमे,
'माँ-माँ' कहीने त्रिशलाना चरणमां पडता तमे,
'तारक थजे तुं विश्वनो' आशिष देती मावडी
त्यारे तमोनो जेमणे जोया हशे ते धन्य छे.... (५)

करुणाभावना के कारण आपके शरीर का रक्त यदि दूध बन जाता हो, तो मुझे लगता हैं कि आपके मुख से निकलते शब्द शक्कर के जैसे मधुर भी बन जाते होंगे?

क्षीराश्रवलब्धि आदि का वर्णन शास्त्र में किया है। उसका अर्थ यह हैं कि उस लब्धिवाले जो भी बोलते हैं, वे शब्द श्रोताओं को दूध के जैसे मीठे लगते हैं।

प्रभु ! आप भले अभी तक मुनि नहीं बने, फिर भी मुनिपति ही कहलाते हो। तो आपके प्रत्येक शब्दों में कैसी मीठास होगी.... उसकी तो मात्र मुझे कल्पना ही करनी पडेगी।

हाँ!

दूध को मीठा बनाने के लिए उसमें शक्कर डाली जाती है, परंतु शक्कर को मीठा बनाने के लिए दूसरी शक्कर की जरूरत नहीं पडती।

प्रभु ! आपके शब्द दूध जैसे नहीं, शक्कर जैसे ! स्वयं मीठे!

उसमें भी लौकिक जगतमें परमपूज्य ऐसी 'माँ' के साथ बातचीत करनेवाले

सज्ञनशिरोमणी आप कैसी अद्‌भुत भाषा बोलते होंगे?

सुबह में आप जाते होंगे 'माँ' के पास....

'माँ' भी आपके दर्शन के लिए प्रतीक्षा करती होगी....

'माँ' को देखते ही आसानी से दौडकर उनके चरणों में गिर जाते होंगे ना आप!

'माँ अच्छा है ना ?' ऐसे पूछते होंगे आप!

संपूर्ण विश्व आपके चरणों में रहे, और आप 'माँ' के! वह 'माँ' कितनी पुण्यशाली होगी।

माँ त्रिशला कोई भोली नहीं है....

वह तो बारहव्रतधारिणी श्राविका हैं।

वह जानती है कि 'मेरा लाल चरमतीर्थाधिपति बननेवाला है।'

वह जानती है कि 'मेरा उस पर हक कितना है? कैसा है?'

पर मातृत्व उसे बुलवाता हैं।

गद्‌गद् स्वर से आशिष देती है माँ त्रिशला, 'बेटा! आप विश्वके तारणहार बननेवाला ही हो, मुझे पता है। मेरे आशिष की आपको जरूरत नहीं हैं, उसके बिना भी आप विश्वतारक तो बनोगे ही।

फिर भी, माँ हूँ ना! इसीलिए आशीर्वचन बोले बिना रह नहीं सकती, इन वचनों की मजाक मत करना। नहीं, नहीं! मेरा लाल ऐसा अभिमानी नहीं है। वह तो बहुत विनयी है, समझदार है।

और आप बोलते होंगे 'माँ ! आशिष तो सभी को चाहिए ही, मुझे भी... आप भी बरसाते रहना मुझ पर आशिर्वाद की वर्षा! यही मेरा कवच, मेरा बख्तर बनके रहेगा... माँ। आप कंजूस मत बनना।

आपके वह शब्द, उस समय के भाव, वह श्रेष्ठ औचित्य शास्त्रदृष्टि से देखनेवाले तो प्रभु! आपके उपर फिदा-फिदा हो चुके है।

वाह ! वाह ! वाह !

आ रूपवंती, गुणवंती राजकन्या ने जरा,
तुं जोई ले एम विनति त्रिशला तने करता सदां।
वैराग्यधारा छलकता तुज नेत्र उदासीन बन्या,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ...... (६)

आखिर आपकी उम्र यौवन तक पहुँची.... माँ जानती थी कि 'यह तो तीर्थंकर की आत्मा है, अवश्य संयम लेनेवाली ही है। परंतु माँ यह भी जानती थी कि मल्लिनाथ और नेमिनाथ के अलावा बाकी के सभी तीर्थंकरों ने पहले शादी की और, बाद में दीक्षा ली, तो फिर मेरा वर्धमान भी शादी करके दीक्षा ले तो उसमे कोई दिक्कत नहीं है?

मुझे पुत्रवधु का मुँह देखने को मिले....

मुझे सास और बाद में दादी बनने का अवसर मिले....

परंतु वर्धमान को समझाना कैसे?'

प्रभु चारों ओर आपकी सुवास फैली हुई है, इसीलिए राजा आदि अपनी राजकुमारीओं के फोटे भिजवाने लगे थे। माँ त्रिशला तो उन फोटो को ही एकटक देखती थी। बाकी सब भूल गई थी... उन्हें हो रही थी अधीरता!

सुबह होते ही कोई एक राजकन्या का फोटो लेकर माँ त्रिशला के समक्ष हाजिर!

शुरूआत में तो 'माँ' को अचानक आते हुए देखकर प्रभु ! आपको झिझक होती थी, पर 'माँ' तो पूरी तैयारी के साथ ही आती थी।

'बेटा ! यह फोटो आया है, जरा नजर तो कर, है तो एकदम सुंदर! और 'आकृतिः गुणान् कथयति, इस न्याय से उसमें गुण भी ऐसे ही होंगे, आप जरा नजर तो करो, हमने कहाँ हाँ कही है ? आपकी सम्मति होगी, फिर ही आगे बात करेंगे', माँ बोल रही थी।

परंतु माँ तो पहचानती थी आपके स्वभाव को ..... आपको स्त्री की तरफ नजर करने की इच्छा ही कहाँ पर हैं? उसमें भी शादी के लिए? अनंतसंसार को बढाने वाली शादी के लिए?

आप तो उसमें विष्टा के दर्शन करनेवाले ज्ञानयोगी हो!

आप तो उस कन्या में नागिन- और साँप देखनेवाले ज्ञानयोगी हो!

आप में उभरती है करुणा.... बिचारे कितने ही युवान-भोगी जीवों के भोग ले लेगा यह एक पुद्गल का जत्था!

विचार भी आता होगा कि 'सिर्फ यह एक स्त्रीतत्त्व जगत में अगर न हो, तो दुर्गति नामका पदार्थ ही कदाचित् अस्तित्व में न होता....'

अकथनीय वैराग्य छलक रहा था आपकी आंखों में!

उदासीनता छा रही थी आपकी आंखों मे!

डर जाती थी माँ त्रिशला! प्रभु आपकी यह बाल्य अवस्था देखकर।

वह दुविधा में पड जाती थी कि 'लग्न के लिए आग्रह करना? या फिर आपकी वैरागयधारा देखकर भाग जाना?'

ऐसा बारबार हुआ, अंत में माँ जीती.... नहीं! सचमुच तो प्रभु आप ही जीते। मुझे पता है कि 'भोगावली कर्म भोगने बाकी है, इसलिए ही प्रभु शादी करेंगे, उसके सिवा नहीं। लग्न (शादी) तो प्रभु के लिए कर्म को खत्म करने का एक उपाय है। और इसी कारण से आपने शादी की।

माँ समझती थी कि 'मैं जीत गई, मैने वर्धमान को मना लिया।'

परंतु मैं समझता हूं कि 'आपको कोई जीत सके ऐसा नहीं है। आप ही जीते हो शादी करके भी।'

संलेखनाने आदरी अनशन करी माता-पिता,
अंतिम समय आराधवा करता हता निज साधना,
पडखे रही उपदेश दई भाथुं दीधुं परलोकनुं,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ..... (७)

सिद्धार्थ महाराजा और माँ त्रिशला ने अंत में खुद का आत्मकल्याण साधने का निर्णय कर लिया! बेटे का राग घटा दिया। आखिर में केशीगणधर के परिचय में आए हुए थे। भगवान पार्श्वनाथ के श्रावक थे, समाधिमृत्यु की महत्त्वता को समझते थे, और उसके लिए अनशन और संलेखना की भी आवश्यकता उनको ध्यान में थी।

काल के अनुसार कर ली संलेखना....

अंत में स्वीकार लिया अनशन....

आपके जैसा बेटा जिनके पास हो, तो उनको समाधि की प्राप्ति में कभी भी तकलीफें पड सकती है क्या? आप खुद ही उनकी समाधि के लिए कितने प्रयत्नशील होंगे, वह तो में आसानी से समझ सकता हूँ।

संथारे में दोनो लेटे हुए थे....

आप सतत उनके पास बैठे होंगे।

उनको संसार की ममता जग न जाए उसके लिए सक्रिय प्रयत्न करते होंगे।

परदेश जानेवाले स्वजन को जैसे उनके परिवारजन रास्तेमें खाने-पीने के लिए भाता बांधकर देते है और परदेश जाने के बाद रहने-खाने आदि के लिए पैसों की व्यवस्था कर देते है,

उसी तरह माता-पिता भी परलोक में जा रहे है, उनको वहाँ अच्छी से अच्छी गति मिले, आत्मा के हित की सभी अनुकूलताएँ मिले, उसके लिए आपने कैसा श्रेष्ठ उपदेश दिया होगा।

प्रभु ! ऐसे तो आपके शास्त्र में समाधि प्राप्ति के लिए उपयोगी बहुत से श्लोक आलोचित किए गए हैं, फिर भी आप वह श्लोक बोलते होंगे, तब आप उन्हें कैसे समझाते होंगे? आप कैसे भावविभोर बनते होंगे? आप कौन से पदार्थ पर ज्यादा भार देते होंगे? वह मुझे खास जानना है, अनुभव भी करना है।

परंतु वह तो मेरे लिए अशक्य ही बन गया हैं।

मुझे भी बहुतों को समाधि देने के प्रसंग आते हैं।

मुझे भी अपनी मृत्युसमय की समाधि की चिंता है।

कुछ नहीं,

आप नहीं, तो आपके शासन के कोई संविग्न-गीतार्थ महात्मा अंत समय में मेरी पास हो, उतना तो आप मुझे करके ही देना!

वह भी शायद शक्य न भी बने, तो भी आपके शासन के अधिष्ठायक देव मेरे

सहायक बने, उतना तो आप मुझे करके ही देना!

वह भी कदाचित् शक्य न बने, फिर भी मैं स्वयं ही मेरे समाधिमृत्यु के समय खुदको संभाल सकुं, इतना सामर्थ्य आप मुझे देना!

ज्यां रागना तोफान भरपूर शयनखंड दिवालमां,
वैराग्यवाणी वहेती तारी, यशोदाना कानमां,
स्वामी ! सिधावो 'श्रमणपंथे' अनुमति ज्यारे दीधी,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (८)

माता-पिता का स्वर्गवास हुआ, गर्भ में ग्रहण किए हुए नियम तो पूरे हो गए... परंतु आज्ञा (अनुमति) लेनी बाकी है यशोदा की!

एक बडी जिम्मेदारी आपके सिर पर थी उनकी।

प्रियदर्शना पुत्री है, पुत्र नहीं.... इसीलिए यह तो कभी ना कभी ससुराल जानेवाली ही है।

सास-ससुर अब हैं नहीं, कि यशोदा उनके साथ रह सके।

नंदीवर्धन राजकार्य में डुबे हुए हैं, और इस तरफ जेठजी के साथ मर्यादा भी बहुत संभालनी पडती हैं।

जेठानी के साथ कितना समय निकाले? उल्टा जेठ-जेठानी का संसार यशोदा के मनमें जलन उत्पन्न कर दे, ऐसी शक्यता बहुत बढ जाती है। उनका सुख यशोदा को दुखी बना देता है।

विश्वास देकर पराए घर की कन्या को भरयुवान उम्रमें उनकी इच्छा के बिना रखडते रखना वह अनुचित प्रवृत्ति आप कैसे कर सकते हो ?

हाँ! उनको समझाना वही एक मात्र उपाय!

और प्रभु ! आपने तो इतिहास रचा।

शयनखंड में इकट्ठे होते है पति-पत्नी! चलते हैं कामविकार के भयानक तूफान।

विश्व के महारथी भी स्त्रीओं के सामने आग के समीप बरफ!

पिघलकर बनते हैं पानी!

कोई टिके नहीं है! महादेव पार्वती के पास, विष्णु लक्ष्मी के पास, ब्रह्मा उर्वशी के पास! सभी चलित हुए हैं।

प्रभु! शादी तो आपने भी की, संसार के सुख तो आपने भी भोगे.... परंतु मैं जानता हूं कि, 'वह भोग भी आपके के लिए योग ही था, सिर्फ भोगावली कर्मों को खत्म करने के लिए आपने भोगा था भोग।

जैसे श्रीमंत लोग मैले होने पर पहने हुए कपडे उतार देते है, वैसे ही जैसे वह भोगावली कर्म खत्म हुए वैसे आपने भी भोग नाम के वस्त्रों को उतार दिया।

प्रश्न है सिर्फ यशोदा की सम्मति को प्राप्त करने का।

एक पत्नी अपने पति के पास शयनखंड में क्या अपेक्षा रखेगी? वह तो पूरा विश्व जानता हैं, परंतु भगवान न जाने आपने यशोदा को कैसा वैराग्यरस पिलाया अपने शब्दों में.... कि यशोदा की सभी इच्छाएँ जलकर राख बन गई।

प्रभु ! इतने में ही पूरा नहीं हुआ।

कारण कि यशोदा कामसुख भले छोड दे, परंतु इतनी तो अपेक्षा वह रखेगी ही कि आप उसके साथ रहो। स्नेह सुख तो मिले? प्रियदर्शना के वियोग में कोई तो प्रिय स्वजन पास में रहे? अरे, ७० वर्ष की बुढिया को भी स्वयं के पति का अस्तित्व तो चाहिए ही।

पर समझाया होगा आपने यशोदा को उनका कर्तव्य कि 'आपके स्वार्थ के खातिर मेरे मंगलकारी मार्ग को रोकना मत। मैं यदि संसार में रहकर मोक्ष को प्राप्त करूंगा, तो भावि क्रोडों लोग भी उसी मार्ग पर चलेंगे। परंतु, वह सभी मेरे जैसे संसार में अलिप्त रहने का सामर्थ्य नहीं होनेसे संसारगामी बनेंगे... उनको तो उनके लिए उचित ऐसा राजमार्ग तो देना ही पडता है। और उसके लिए मुझे भी राजमार्ग पर चलना पडेगा।

यशोदा! इसीलिए संयम लेकर मोक्षमें जाने के राजमार्ग पर जाने की अनुमति आप मुझे दो। संसार में रहकर मोक्ष में जाने की सीढी पर चलने का आग्रह आप मेरे पास मत रखो, बिचारे मेरे पीछे चलने वालों के लिए पगडंडी तो भयंकर होनारत का भोग बनेगी।''

आपने ऐसी कोई बात समझाई होगी यशोदा को, और अपनी पत्नी यशोदा साक्षात् त्याग का अवतार बनी होगी।

मन में से सभी विकार-वासना को हटाकर....

मन में से आपके प्रति स्नेहराग को भी घटाकर....

मन में दृढ औचित्यभावना को धारण कर....

बोली होगी यशोदा,

''स्वामी! आपकी तरह मैं तो इस महान पंथ पर कभी भी न आ सकूंगी, क्योंकि मनका सामर्थ्य नहीं है।

पर आपको नहीं रोकुंगी....

हा! आप जाओगे, तब रोना तो आएगा... परंतु उन आंसुओं को आपकी विदाय के समय के मंगल आसोपालव के तोरण रूप बना दूंगी।

आप प्रयाण करोगे, तब आपको नजर नहीं आऊंगी। किसी जगह सिसकना चालु हो तो, लोग उसे भी अपशुकन मान लेते है।

आपके बिना, प्रियदर्शना के बिना, सास-ससुर के बिना... किसी के भी बिना लंबी जिंदगी पूरी कर लूंगी मैं, मात्र आपकी स्मृति के सहारे!

हा! आपसे ,स्पष्टता कर दूँ, मुझे याद मत करना आप।

कारण ?

आपका स्मरण मेरे लिए भले उत्थान का कारण हो....,

अ परंतु मेरा स्मरण आपके लिए तो पतन का कारण बनेगा!

मेरे निमित्त से मेरे स्वामी का आंशिक भी भाव-पतन मुझे नहीं चलेगा।

बस,

आज से, इस क्षण से अब मेरे लए आप पतिदेव नहीं, देवाधिदेव हो!

वर नहीं, मुनिवर हो!

भोग योग्य नहीं, पूजा योग्य हो.....

पधारो स्वामी!''

कैसे होंगे वे क्षण?

यदि आपका वैराग्य महान कहलाता हैं, तो

आपके प्रति संपूर्ण रागवाली और फिर भी आपके लिए प्रज्ञापूर्वक आपका त्याग करनेवाली वह त्यागमूर्ति यशोदा का त्याग तो प्रभु! क्या ज्यादा महान नहीं कहलायेगा?

आप तो यशोदा को चाहते ही नहीं थे, और त्याग कर रहे हो.... उसमें आपकी क्या बडाई हैं....

यशोदा तो आपको बहुत चाहती है, तो भी आपकी प्रसन्नता की खातिर उन्होंने आपका त्याग किया है।... यही उनका बडे से बडा त्याग हैं ना!

प्रभु ! दुनिया भले यशोदा को भूल गई हो, पर मैं यशोदा को भूला नहीं हूं। उनका प्रतिबिंब याद करते ही मैं रोमांचित हो जाता हुँ, उनका भाव से दर्शन करता हूँ, उनको भावसे नमन करता हूँ.... इच्छा रखता हुं कि चौदह राजलोक में वह जिस किसी भी स्थान में देव-देवी के स्वरूपमें हो, तो मेरे पास आकर आपके साथ के उनके सभी अनुभवों को मुझे कहकर सुनाए।

हे तात ! चिंता कदी न करशो मारी के मुज मातनी,
करजो सदा चिंता परंतु त्रण जगतना हितनी।
प्रियदर्शनाना वचन सुणी हर्षे वही तुज आंखडी,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे..... (९)

यशोदा तो परिपक्व उम्रवाली थी, इसीलिए उनको सच्ची बातें समझाई जा सकती थी।

पर पुत्री प्रियदर्शना?

वह क्या पिता को अनुमति दे देंगी?

वह जिद्द तो नहीं करेगी ना?

परंतु मुझे लगता हैं कि वह काम यशोदा ने ही कर लिया होगा। 'माँ' ही पुत्री को उसकी भाषामें समझा सकती होगी।

और एक दिन यशोदा के साथ-साथ प्रिया भी आपके पास पहुँची होगी।

''पिताजी' मैंने सुना है कि आप हम सभी को छोडकर साधु बनने वाले हो?''

''हाँ!'' आपने जवाब दिया होगा और यशोदा के सामने प्रश्नार्थ से भरी हुई दृष्टि

से देखा होगा। आपको शंका हुई होगी कि 'यशोदा ने इसे चढाया तो नहीं हैं ना, मुझे रोकने के लिए।'

''मेरी एक बात मानोगे?'' प्रिया बोली होगी।

''बोल....'' आपको आघात-सा लगा होगा! यह मांग लेगी, ''आपको कहीं पर भी जाना नहीं हैं।''

पर प्रियाने यशोदा के उपदेश (सीख) का पालन किया होगा आपकी चिंता को दूर करने में निमित्त बनकर यशोदा ने आपके मार्ग को ज्यादा निष्कंटक बनाकर रख दिया होगा।

''आप जाओ, पिताजी! पर मेरी एक बत याद रखना। आप मेरी और मेरे माँ की चिंता बिलकुल मत करना। आप इस चिंता में रहोगे तो, पिताजी ! विश्वका हित कब विचारोगे ?

उस सभी का पाप हमें लगेगा। हम तो हमारे तरीके से जी लेंगे....।' प्रिया बोली होगी।

और प्रभु ! आपको तो सोने पे सुहागा हो गया होगा।

अब आपका रास्ता एकदम साफ!

अरे, यह तो महामंगल!

ऐसी पत्नी और ऐसी पुत्री!

धन्य है यह दोनों कि जिन्हें आप मिले।

या धन्य आप हो कि ऐसी पत्नी-पुत्री आपको मिली।

मुझे लगता है प्रभु ! कि तब आप पागल बन गए होंगे। आपकी आंखों में मात्र आसूँ के बूंद ही लगे नहीं होंगे, पर वो बूंद झरमर-झरमर बरसात की तरह बरस रहें होंगे।

आप वात्सल्य से गले लगाने दौडे होंगे प्रियदर्शना को।

उठा लिया होगा आपने उसे अपने हाथों में, ''वाह! मेरी समझदार बेटी।'' ऐसा बोलकर। इस तरह के स्नेहराग में भी भीतर में जबरदस्त कोटि का वैराग्य ही हुआ होगा.... वह तो प्रभु मैं समझता हूँ। दुनिया को वह समझ कब आए? यह पता नहीं। पर लौकिकपितृत्व का यह दिखावा हकीकतमें लोकोत्तरपितृत्वमें से ही जन्म पाया होगा।

'भूला पडया छे भरतना मानव सवि भव वनमहीं,
करो स्थापना शासन तणी जेथी तरे ते भव थकी,'
लोकांतिको चरणे पडी, विनवे छे तुजने लळी लळी,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते घन्य छे ...... (१०)

हम विहार करके किसी भी संघ में पहुँचने वाले है। संघवालों को समाचार मिले। इसीलिए अगले दिन संघ के श्रावक विनंती करने आते हैं 'म.सा.! पधारना ....'

हम तो आनेवाले ही है, वे सभी विनंती करने आए या न भी आए। वह वस्तु ही गौण होती हैं, पर फिर भी श्रावक आदि खुद के आचार का पालन करने के लिए और अंदर के भक्तिभाव.... दोनों से प्रेरणा पाकर विनंती करने के लिए दौडे आते हैं।

मुझे प्रभु ! लोकांतिक देवों का आचार भी ऐसा ही लगता है।

वे सब विनंती करते है, और फिर आप दीक्षा लेते हो.... ऐसा नहीं है पर आपकी दीक्षा का समय आ ही गया होता है, सब कुछ निश्चित हो ही जाता है और बाद में वे देव आदि विनंती करने आ जाते है। जैसे कि मात्र एक औपचारिक विधि करने के लिए ही आते हो!

हालाँकि प्रभु! मात्र यह व्यवहार नहीं है। उनके मन में ऐसी भावना भी है कि 'बिचारे! भरतक्षेत्र के मानव पार्श्वप्रभु का शासन कमजोर होने के कारण भूले भटक रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में एक नए शासन की स्थापना की जाए, तो सभी को जहाज मिल जाए, संसार तिरने के लिए! और ऐसे भाव से ही वे आपको विनंती कर रहे हैं।

शक्य है कि उन लोगों की यह भावना ही उन्हें एकावतारी बना देती होगी....

भूख्या भिखारीने गरीबो दोडता तुज आंगणे,
'आवो पधारो' एम कही सत्कारी दे तुं दानने,
हर्षे भरेला तेमने जोईने तुज आतम हस्यो,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (११)

वर्षीदान प्रारंभ हुआ। रोज १ करोड और ८ लाख सोनामोहरों का दान!

दान लेनेवाले भूखे, भिखारी और गरीब!

देवोंने आकाश में चारों ओर घोषणा की है कि 'वरं वृणुत'! सभी जाओ वर्धमानकुमार के पास। जो कुछ मांगोगे वह सब वर्धमानकुमार देंगे ! सभी माँगने से थक जाएँगें, पर वर्धमनकुमार देते थकेंगे नहीं।

ऐसी घोषणा को सुनकर प्रजाजन तो अधीर हो गए। असंतोषकी आग तो हर एक के मनमें जलती ही रहती है। इसीलिए सभी को एक जैसी ही चिंता होती है। 'वहाँ घट जाएगा तो? हम रह जाएँगे तो? हम पहले पहुँच जाए...' इसीलिए सचमुच वे दौडने लगते थे।

हजारों की मेदनी राजमहल के मेदान मै इकट्ठा हुई थी, और वहाँ सभी सैनिकों को व्यवस्था के लिए भेज दीए होंगे। क्रमशः सभी को आपके पास भेजा जाता है ।..... पर दूर से ही आपको देखकर, आपकी प्रतिभा देखकर, आसपास खडे देव आदि को देखकर याचकों को संकोच होता था।

आगे बढने से अटक जाते हैं।

आपको इस बात का ख्याल आ जाने सें 'आइए-आइए, पधारिए-पधारिए।'

ऐसे आमंत्रण शब्द आपके मुँह से निकल जाते है।

आपके मुख पर के भाव, शब्दों की मीठास.... वह चायकों की शरम को भगा देती है, संकोच को मिटा देती है, और जल्दी-जल्दी आपके पास आ जाते है।

आपकी दान देने की पद्धति में कभी भी ऐसा लगता नहीं कि आप उन लोगों पर उपकार कर रहे हो, और यह बिचारे सभी गरीब बनकर आए है।

यहीं तो आपकी दानवीर होने की विशिष्टता है।

मुझे किसीने आपके लिए दो-तीन शिकायत की है।

(१) यदि प्रभु 'जितना मांगे उतना ही देते थे' तो प्रतिदिन सिर्फ १ करोड ८ लाख सोनामोहर ही क्यों?

क्या याचक आदि इतना ही मांगते?

सभी निस्पृह बन गये थे?

गौतमबुद्धने तो रोज की अगणित सोनामोहर का दान किया है। तो ज्यादा उदारता इनकी क्यों कहलाती है?

(२) प्रभु अपने हाथ से ही दान देने का आग्रह क्यों रखते है?

सब खुल्ला क्यों नहीं रखते?

गौतमबुद्धने तो ऐसा ही किया था। याचक आते थे, अपनी इच्छा के अनुसार खुद ही ले लेते थे।

कोई भी देने वाला नहीं, कोई भी रोकने वाला नहीं... उदारता की यही तो पराकाष्ठा है।

क्या प्रभु को डर था ? कि,

मेरी संपति घट जाएगी तो?

या सभी ज्यादा लेकर चले जाएंगे तो?

लाओ ना, मैं ही खडा रह जाउ, ताकि मुझे योग्य लगे उस रीत से ही दूं ।

प्रभु !

आपको कंजूस कहने वाले भी इसी दुनिया में पैदा हुए है क्या?

पर मैं आपको बराबर पहचानता हूं।

अगर आप कंजूस होते तो, यदि आप याचकों की इच्छा से कम देते होते तो,

तो देव कभी ऐसी जाहेरात नहीं करते कि

'प्रभु जितना मांगेंगे उतना देंगे।' क्योंकि इसमें तो देवों की ही इज्ञत जाती है। उनको ही लोग सब गाली देंगे कि यहां पर तो कंजुसाई है, मुश्किल से मिलता है।

चतुर देव ऐसा होने देंगे क्या?

आप कंजूस तो थे ही नहीं।

तो फिर दान का क्यों माप? अमाप क्यों नहीं?

प्रभु ! यही आपकी विशिष्टता! आपका प्रभाव!

आपको देखकर, आपकी उदारता देखकर याचकोंकी तृष्णा खत्म होती थी, उनको लगता कि

'जो भी वस्तु हम लेने आए हैं, वह तो यह राजकुमार कचरे की तरह फेंक रहा हैं। तो क्या हमें कचरा इकट्ठा करना हैं? किस काम की यह संपत्ति!'

और तृष्णाहीन बने हुए वह लोग आपके पास आते थे जरूर, पर आपके पास से

आपके स्मृतिस्वरूप, आपके भेट स्वरूप एकदम सामान्य वस्तु लेकर चले जाते। इस कारण से आपका दान मापानुसर हुआ।

पर प्रभु!

गौतमबुद्ध ने अमापदान दिया, संतोषगुण नहीं दिया।

आपने पहेले से ही संतोष दे दिया, मापसर दान उसी कारण से हुआ।

एकदम सीधी बात है कि इसमें आप कंजूस साबित हुए, पर द्रव्यदान के बदले में गुणदान करने की आपकी कोई अलौकिक दानवीरता ही आवेदित होती हैं।

अब बात रही खुद दान देने की।

उसका रहस्य भी यही है कि 'प्रभु खुद के प्रभाव से संतोषगुण का दान देने की इच्छा रखते थे। यह दान प्रभुकी गैरहाजरी में कौन दे ? धन तो सभी अपनी ओर से ले सकते थे पर संतोष तो प्रभुके दर्शन से ही प्राप्त होगा ना?'

इसीलिए आप खडे-खडे, खुद ही दान देते रहे।

सच्चा और लंबा परोपकार कैसे किया जाए? यह तो प्रभु ! आपके पास ही सीखना पडेगा।

यह तो आपकी गुणगरिमा का एक अंश देखा।

दूसरी ओर

संतोषी बने हुए याचक सिर्फ खुद की आवश्यकता के अनुसार ही इच्छा रखते थे, और प्रभु आप क्षणका भी विलंब किए बिना उनकी इच्छा पूरी कर देते थे। तब उनकी चिंताएँ आदि क्षण में ही भाग जाती थी। आनंद की लहेर उनके मुख पर तैरने लगी। वे भोले याचक हर्षाश्रु के साथ आपको आशिष देते थे।

''राजकुमार ! बाप! आपने तो हमारे मृत्यु को महोत्सव दिया है। चिंताएँ ऐसी आ पडी थी कि जहर खाना पडता। पर आपने हमको अमृत पिला दिया। भगवान आपकी सभी इच्छाएँ पूरी करे....'

वह कोई गोख-गोख कर (याद-याद कर) बनाए हुए-बोले हुए शब्द नहीं थे...

आई हुई परंतु वह तो हृदयसमुद्रमें हर्ष की हवा उछलने से बाहर आर्शीवचनों की भरमार है।

और संतुष्ट मन के साथ जब याचक लौटते थे, तब नाथ! आप अंतर में हँसने लगते थे।

आप जानते थे कि यह कायम का उपाय नहीं है।

धर्म के बिना ये लोग सच्चे सुखी कहाँ से होंगे? पर करूणाभावनाका स्वरूप ही यह है कि किसी को बाहर से दुःखी देखकर दुःखी और बाह्यसुखी देखकर सुख उत्पन्न कर ही देता है।

पुनः वहाँ से जाते हजारों याचकों को....

और उनकी पीठ को देखकर हँसते हुए आपके नयन....

ये सभी दृश्य मुझे तो सिर्फ मन से ही देखने हैं ......

'भूख्यो रडे छे बाल मारो बटकु रोटलो आपी दे,
मरवा पडी छे मावडी ! तुं बाळवाने काष्ट दे,'
अे करुणशब्दो सुणी अनराधार तुज आंखो वही,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ...... (१२)

यह तो आर्यदेश की प्रजा! उसमें तो स्वाभिमानवाले, गर्विष्ठ मानवों की कभी कमी नहीं होती हैं। एक भाई अपने पुत्र को लेकर आपके पास वर्षीदान लेने आया।

कपडे फटे हुए....

मुखपर सभी चिन्ह निस्तेज हो गए थे....

नसें-पसलियाँ सभी दिख रही थी...

दाढी-मूँछ सब ज्यादा बढी हुई थी....

अतिगरीब, अति भूखमरे का सूचन करनेवाली पूरी अंदर चली गई हो वैसी आंखे थी।

हाथ में पकडा हुआ बालक भी ऐसी ही परिस्थिति का प्रदर्शक था।

आप तो यह सब देखकर आर्द्र हो जाते थे....

आपने मुठ्ठी भर-भरके सोनामोहर ली ...

''माफ करना राजकुमार! इतना सब मुझे नहीं चाहिए।'' दृढ स्वर से वह भाई बोले।

''अरे, यह कोई ज्यादा नहीं हैं इतना तो सामान्य है।'' आप बोले।

''नहीं पूरी जिंदगी मैंने किसी के पास कभी भी भीख नहीं मांगी। कुछ लिया भी नहीं। खुद की मेहनत का कमाके जिया हूँ और परिवार को भी संभाला है। मेरे सिर पर किसीके एक भी पैसे का कर्ज नहीं हैं। मौत मंजूर है, पर हाथ फैलाना मंजूर नहीं।

तो भी,

इस समय मुझे आना पडा हैं, भीख नहीं मांगने की आदत मुझे छोडनी है। पर यह मेरे लिए नहीं, इस बालक के लिए।'' कहते-कहते वो भाई साथ में आए बालक को देखकर रोने लगे।

''दुर्भाग्य ऐसा जागा है कि खाने के लिए दो रोटी भी नहीं ला सकता। मुझे तो ठीक' पर मेरे कारण इस निर्दोष बालक को भी परेशान होना पड रहा है। इसमें इसका क्या दोष? इसने मेरे यहाँ जन्म लिया यहीं ना ? भूख से पीडित बनकर रोते ही रहता हैं।

कुमार! इसको खाने के लिए रोटी दे दो।

नहीं, मेवा-मिठाई नहीं चाहिए इसे! नहीं खिलाना मुझे इसे। इसको जरूरत सिर्फ रोटी के जितनी ही है, तो इससे ज्यादा मुझे इसके लिए जरूरत भी नहीं है।''

''परंतु भाई! यह तो एक टाईम का भोजन हुआ, शाम को क्या? और कल का क्या?'' आपने कहा, और खुमारी से भाई बोलने लगा, ''वह तो मैं अब मेहनत करूंगा ना। मेरा नसीब नहीं हैं ऐसा मैं क्यों मान लूं?''

"पर नहीं मिला तो?"

"तो फिर से आऊंगा, इसके लिए।"

"पर खाए बिना तू काम कैसे कर सकेगा?"

"है शक्ति, थोडे दिन खाए बिना काम करने की..."

आश्चर्य हो रहा था आपको, आनंद हो रहा था आपको, दो रोटी जैसी वस्तु का दान देते प्रचंड करूणा उभर रही थी आपको....

और तब ही वहाँ दूसरा प्रसंग बना।

"कुमार! सोनामोहर नहीं, सिर्फ लकडे चाहिए," किसी एक ने याचना की।

"किस लिए?"

"मर गयी है मेरी माँ! उसे जलाने के लिए। स्मशान में जलाने के लिए लकडे के रूपए देने की मेरी शक्ति नहीं हैं। बस इतना दे दो, 'माँ' को अग्निदाह नहीं दूंगा तो कैसे चलेगा? उसके मृतदेह को भटकता हुआ तो नहीं रख सकते ना?

इतनी मेहरबानी मुझ पर करो, राजकुमार!"

आपने लकडे की व्यवस्था भी कर दी।

पर इन दोनों प्रसंगों ने आपको फूट-फूटकर रूलाया।

उसमें हर्ष के, करुणा के.... सभी प्रकार के आँसु इकट्ठे थे।

आपका वर्षीदान सचमुच वर्षीदान बना। आपने आंसुओं की बरसात को बरसाकर जबरदस्त वर्षीदान दे दिया।

'हे मोहराज! पराजयो ने, आज लगी भले हुं वर्यो,
संग्राम अंतिम खेलवाने आज आतम सळवळ्यो।'
युद्धना रथ समी शिबिकामां जे योद्धा शोभता,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (१३)

बहुत समय पसार हो गया।

देखते देखते वर्षीदान का एक साल पूर्ण हो गया।

मागसर वद दशम का दिन आ गया।

नंदीवर्धन ने दीक्षा के वरघोडे के लिए पालखी तैयार करा दी, तब इंद्र ने दैवी पालखी को उस लौकिक पालखी में प्रवेश कराकर उसे ही अलौकिक बना दी।

यशोदाने वचन का पालन किया।

उन्होंने मंगल गीत गाए

आँसुओं को बडी मुश्किल से रोककर रखे।

अंतर के विरह (वियोग) की वेदना को यशोदाने बाहर से रूक्ष हास्यरूप बनाया।

प्रियदर्शना को साथ में रखकर यशोदा मानो कि उसके हाथ के सहारे से जमीन पर गिरते-गिरते रह गई थी।

आप वह सब देखते-समझते हुए भी दृढ रहकर आगे बढे। शिबिकामें चढकर सिंहासन पर आप बैठ गए थे।

आपके मुख पर उस समय शूरवीरता के भाव अपने आप ही प्रगट हुए।

मनोमन ही आप बोले,

''ओ मोहराज! अनंतकाल से आपका गुलाम बनके रहा हूँ।

ओ मोहराज! कितने ही बार आपके सामने सिर उठाया हैं, पर उसमें मैंने मार खाई, हार को ही गले लगाया।

पर वह था भूतकाल ।

यह मेरा अंतिम संग्राम!

देखलेना मेरी ताकत तूं!

इस समय तो हार नहीं होगी।

प्रभु !

आप तब शिबिकामें सिंहासन पर बैठे हुए राजा नहीं लग रहे थे।

आप लगते थे युद्ध के रथ में बैठे हुए शूरवीर योद्धा!

आपकी वह शोभा मेरे मन को आकर्षित करती हैं।

बिचारे क्षत्रियकुंड के हजारों लोग ऐसे ही समझते होंगे कि 'वर्धमानकुमार को कितने जलसे हैं, कैसा सिंहासन, कैसी शिबिका-कैसी....'

पर क्या पता उनको कि यह तो जीव का लगातार होनेवाला संग्राम है। मौत को हाथ में रखकर लडने जैसा संग्राम है।

प्रजाजन तो कुतूहल से, आनंद से, आश्चर्य से आपकी शोभायात्रा को देखते, अपने सभी कार्यों को नजर अंदाज करके शोभायात्रा के पीछे-पीछे ही आते रहे।

हजारों माता अपने बालकों को उठा-उठाकर, उंगली से बता-बताकर आपके दर्शन करा रही थी, 'वो अपने प्यारे राजकुमार वर्धमान।'

''माँ वे कहाँ जा रहे हैं?'' बालक पूछ रहे थे।

''संयम लेने, संसार तोडने'' समझदार माताएँ जवाब देती थी।

''माँ इसका क्या मतलब?'' बच्चे पूछ रहे थे।

''तुम्हें समझ में नहीं आएगा बेटा। बडा हो जाएगा तब समझ में आएगा।'' माँ बोल उठती और गंभीर बनकर साडी के पल्ले से आँखों को पोंछ लेती थी।

बिचारे लडके ! समझ नहीं पाते थे कि मेरी माँ क्यों रो रही है, 'पर इतना जरूर समझते हैं कि 'मेरी माँ दुखी हैं।'

और बच्चे भी चुप हो जाते थे।

तुं श्रेष्ठतम ज्ञानी छतां, आ धावमाता विनवे,
कुल ने कलंक न लागे पुत्र, तुं एवुं जीवन जीवजे,
वगडानी वाटे प्रथम पगलुं, तें प्रभु ज्यारे भर्युं....
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(१४)

आपकी साधना का प्रारंभ हुआ उसके पहले का यह अंतिम तबक्का! माता त्रिशला होती, तो उनको यह कार्य करने का था। पर वे नहीं है, तो उनके स्थान पर धावमाता यह कार्य करती है।

हालाँकि मुझे तो ऐसा लगता है कि माता त्रिशला नहीं थीं, वह एक अपेक्षा से अच्छा ही था। क्योंकि आपका लोच देखने के बाद वह जीवित रहती या नहीं? वह भी बडा प्रश्न था। इसीलिए तो उनके जीते दीक्षा नहीं लेने का आपने अभिग्रह किया था ना!

''भगवान!''

बोल रही है धावमाता! ''कुमार वर्धमान! आपके पिता थे महाराजा सिद्धार्थ! आपकी माँ थी माता त्रिशला!

एक महान कुल के आप पुत्र है।

आपके जीवन में कोई दोष प्रवेश करेगा, तो उसका सब पाप आपके कुल को लगेगा। लोग कहेंगे कि इस खानदान कुल के संतान ने ऐसे कर्म किए....'

वर्धमान!

आप तो महाज्ञानी हो!

आपको उपदेश देना यानि सरस्वती को ज्ञान देना।

समझ रही हूं कि यह एकदम हास्यास्पद गिना जाता है।

फिर भी आपकी धावमाता की यह विनंती है, बुरा मत लगाना।''

लोगों ने भी हितशिक्षा सुनी, मौन रहकर आपने सम्मति दी।

सभी के पास सम्मति को पाकर आपने पीठ घुमाकर, जंगल की ओर कदम बढाने शुरू किए।

साथ में कौन?

आप ही आपके साथ....

आपका सत्य आपके साथ....

आपके बाकी सभी आपके स्नेही आपके चाहक.... कोई भी साथ ना आए....

होश में आए हुए नंदिवर्धन के लिए आपवका विहारदृश्य आघात देनेवाला बना। बेहोश तो ना हुए पर जमीन पर गिर पडे.... बडी मुश्किल से लोगों ने उनको संभाला।

यदि बडे भाई की यह हालत हुई है, तो यशोदा की हालत तो क्या हुई होगी? पर वे नंदी की तरह बेफिक्र बनकर रो नहीं सकी। कुल की मर्यादा, लज्जा गुण उनको रोक रहा था।

धन्य हो वह नारी कि जो ऐसा आघात सहन कर सके।

स्वयं को और प्रियदर्शना को भी उन्होंने संभाल लिया।

आप गए और नंदिने कैसा विलाप किया था, पता है आपको?

त्वया विना वीर ! कथं व्रजामो, गृहेडधुना शून्यवनोपमाने।
गोष्ठिसुखं केन सहाचरामो, भोक्ष्यामहे केन सहाथ बन्धो।।
सवेषु कार्येषु च वीर! वीरेत्यामन्त्रणाद् दर्शनतस्तवार्य।
प्रेमप्रकर्षादभजाम हर्षनिराश्रयाश्चाथ कमाश्रयामः।!

भयंकर जंगल समान है राजमहल तेरे बिना, है वर्धमान!

क्या करू उस जंगल में जाकर?

अब घंटों तक वार्तालाप किसके साथ करूंगा में?

अब किसके साथ भोजन करूंगा?

हर कार्य में तुझे बुलाकर इस बहाने से तेरा दर्शन पाकर स्नेहानंद का अनुभव अब तक तो मैं कर रहा था, पर अब तो मैं निराधार बना हूं। मुझे किसका सहारा है।

अंत में बिनंती की थी नंदि ने'

अतिप्रिय बान्धव! दर्श ते। सुधाज्ञनं भावि कदाडस्मदक्ष्णो :।
निरागचितोपि कदाचिदस्मान् स्मरिष्यसि प्रौढगुणाभिरामः।।

बहुत प्रिय लगता था आपके मुख का दर्शन!

ठंडक मिलती थी आपको देखकर मेरी संतप्त आंखों को!

पर अभी ?

अब तो आप इस तरफ नहीं आओगे।

आप अब कहाँ हो? उसके समाचार भी अब आप तो नही भिजवाओगे ना?

कहाँ पर भी विचरते ऐसे आपको ढूंढना भी मुश्किल...

मेरी जवाबदारी के कारण मुझे निकलना भी मुश्किल...

पुनः आपको कब देख पाऊँगा ? पता नहीं ।

शायद इस जिंदगी में, कभी ....

खैर

मेरे भाई !

आपका यह बडा भाई आज आपके पास भीख मांग रहा है।

अखिल विश्व को दान दिया है, तो आपके भाई को दान देने में क्यूं कंजूस बन रहे हो?

भीख में इतना ही....

कहीं पर भी एक दो पल के लिए मुझे याद करना ।

भले आपका भाई संसारी है, पापी है, स्वार्थी है.... पर आपका बडा भाई हूँ, मेरी इतनी भीख तो आप मान्य रखना ही।

प्रभु !

३० वर्ष की उम्र में अंतिम दर्शन करने के बाद नंदिने पुनः आपके दर्शन कभी किए? उसका अभी तक मुझे पता नहीं चला। शास्त्रों में तो अंतिम ७२ वर्ष में आपके निर्वाण के पश्चात् नंदि के विलाप का वर्णन पढने में आता है। पर उन ४२ वर्ष दौरान कहाँ कितनी बार नंदि आपको मिले... उसे जान नहीं पाया हूँ।

इस नंदि का तो इतना भी उल्लेख मिलता है, पर यशोदा का क्या?

उसका उल्लेख तो अभी तक मिला नहीं है। वे किनते वर्ष तक जीएँ?

आपके केवलज्ञान या निर्वाण के समय वे हाजिर थी या नहीं?

उन्होंने दीक्षा ली या अंत तक संसारी ही रहे?

उनकी मृत्यु कहाँ किस तरह हुई?

उनकी कौनसी गति हुई?

शास्त्रकार मौन है। अलबत यह जानने से हमको कोई सीधे सीधा फायदा तो नहीं है, फिर भी प्रभु वह पात्र ऐसा है ना, कि उनका भावी जानने की उत्कंठा हमको रहती है।

जन्म से लेकर दीक्षा स्वीकार तक की आपकी इन घटनायात्राओं को बराबर ध्यान में ली है मैंने । भले वह साधना की पूर्व भूमिका है फिर भी वह साधना का ही एक कारण बनने से अपेक्षा से वह भी एक स्वयं साधना ही है।

इसलिए उसका ध्यान और वर्णन आपके ही साधना के ध्यान और वर्णन के समान है।

अब शुरू हो रही है महाभिनिष्क्रमण की आपकी साधना!

प्रभु! उसमें आपने बहुत दुःख, उपसर्ग, परिषह सहन किए है, और यह तो कल्पसूत्र के ग्रन्थ के प्रवचनों में सुनने को मिला ही है। पर आपकी जो सूक्ष्म साधना थी कि जो दिखने में शायद सामान्य लगे, आपकी सच्ची आंतरिक साधना थी। उसका मैं ध्यान और वर्णन करूँगा। आप ऐसी ताकत देना कि उसमें ऐसा तन्मय बनु कि जिससे नजदीक के ही भविष्य में मेरे जीवन में भी यह साधना उदय में आएँ।

करूणानिधान ! तें पंचमुष्ठिथी केशलुंचन आदर्यु,
रडता हजारो लोक पण, तुज मुखडुं हसतुं रह्यु।
त्रणलोकनी कल्याणकारिणी, विरती तें ज्यारे लीधी....
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(१५)

हजारों स्त्री-पुरूष वृंद के साथ शिबिका पहुँची क्षत्रियकुंड के बाहर के उद्यान में।

शाम का प्रहर ढलने आया था।

इन्द्र महाराजाने योग्य स्थान में सिंहासन की व्यवस्था कर ली थी।

आप शिबिका में से उतरे, उच्चस्थान पर खडे रहे।

हजारों लोग ''अब क्या होगा ?'' ऐसे कुतूहल से अनिमेष देख रहे थे।

आपको तो किसी को कोई भी उपदेश देना ही नहीं था।

हाजिर है नंदिवर्धन ! यशोदा ! प्रियदर्शना !

पर अभी आपको उन सब के साथ संबंध ही क्या था?

धावमाता ने साडी के पल्लु को फैलाया, और आप एक के बाद एक अलंकारों को निकालकर उसमें डालने लगे।

लोगो को निराशा हुई। 'क्या आज हमारे राजकुमार आभुषण नहीं पहनेंगे? यह सब उनके लिए अत्यंत पीडादायक हुआ।

आप बिलकुल आभुषण रहित बने।

अभी तो एक और अचंभा सभी को देखना बाकी था।

आपने मस्तक के २५% बाल एक ही मुठ्ठी में पकडकर एक जोरदार झटके से खींचकर मूल में से उखाडकर निकाले। नंदिवर्धनादि स्वजन यह देख ना सकें।

बेहोश होकर गिर पडे!

हजारों लोगो ने मुँह घुमा लिया!

घबराहट होने लगी!

रोने की आवाज की तेज चीखों से वातावरण एकदम गमगीन बन गया।

पर आप ?

एक आप ही हँस रहे थे।

करूणा के साक्षात अवतार ऐसे आप! पता नहीं, ऐसे क्रूर आप कैसे बन सके?

हजारों लोग रो रहे थे, और फिर भी आप हँस रहे थे?' हँस सकते हो? खुश रह सकते हो? यह भी आपका विचित्र स्वभाव कहलाता है।

अभी तो सिर्फ एक ही भाग खींचा आपने।

दूसरे पल में दूसरा, तीसरे पल में तीसरा, चौथे पल में चौथा...

मस्तक साफ! मानो घास रहित मैदान।

पांचवी मुठ्ठी से दाढी-मूँछ के सभी बाल एक ही झटके से खींचकर निकाले आपने। नाथ! हमारे बाल खिंचे जाते है, तब खून निकलता है। मुझे लगता है कि गाय के आंचल में से जैसे दूध छूटता हे, वैसे आपके मस्तक पर से, दाढी-मूँछ के भाग से भले धार नहीं पर बूंदे तो उडी ही होगी... हा। दूध के जैसे सफेद!

आंखे बंद करके धावमाताने रो-रो कर आपके सभी बाल खुद के पल्लु में ग्रहण किए। अब सभी को पता चलने लगा कि 'दीक्षा यानि क्या?'

अब सभी को पता चलने लगा कि 'यह मजा नहीं, पर बडी सजा है...'

हाँ! प्रभु! उनकी दृष्टि से तो यह बडी सजा ही थी ना।

'सभी शांत हो जाएँ।' इन्द्र महाराजा ने हाथ उपर करके सभी को शांत होने का आदेश फरमाया।

''वर्धमानकुमार सर्वविरति ग्रहण कर रहे है, बिलकुल आवाज न करें'' इन्द्र की

आवाज बुलंद बनकर सभी के कान में गुंज रही थी। सभी एकदम शांत हो गए। **''करेमि... सामाइयं...''** दो हाथ जोडकर आपने महाभिनिष्क्रमण की प्रतिज्ञा स्वीकारी। आपका यह श्रेष्ठतम चारित्र परिणाम वहाँ पर ही आपको मनःपर्यवज्ञान दे देता है।

कुदरत मानो कि कह रही है कि 'वर्धमान! कोई भी जीव को दुःख नहीं पहुँचाने की आपने प्रतिज्ञा ली थी ना ? तो उसके पालन हेतु सामनेवाले के भावों को जानना जरूरी है। जिससे उनको अप्रीतिकारक.... कुछ भी ना हो। इसके लिए आपको यह मनःपर्यवज्ञान भेंट में देती हूँ।

सच कहूँ भगवान !

आपने साँप को उछाला, देव को पराजित किया और देव ने आपका नाम रखा महावीर! ऐसी प्रसिद्धि है।

भले, बाकी मेरे जैसे तो इस महाभिनिष्क्रमण लेने की ओर जाने की वीरता देखकर ही आपको महावीर मानते है।

दीक्षा ग्रहण करते समय की भावधारा वही है दीक्षाकल्याणक।

चौदह राजलोक के जीवों को एकक्षण के लिए शाता देती ऐसी उस भावधारा को मेरी अनंत वंदना !!!

ओ कीडी-मंकोडा तमे निर्भय बनी जाजो हवे।
मारा निमित्ते लेश पण पडशे नहीं दुख आपने,
प्रत्येक पल विहारमां उपयोग दह जे चालता,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे.... (१६)

प्रभु! करेमि सूत्र की प्रतिज्ञा को लेते ही आप सर्वविरति के अध्यवसाय के मालिक बने। अब षट्काय की रक्षा यह आपका जीवन मंत्र बन गया। 'मेरे निमित्त से कोई भी जीव दुखी नहीं होना चाहिए।' यह नाद आपके रोम-रोम में था।

दीक्षा लेने के साथ ही आपने विहार प्रारंभ किया कि तुरंत ही आपको ईर्यासमिति के पालन का अवसर आया। पर अब तो यह सब आपके लिए एकदम सरल बन गया था। आपके विहार के मार्ग पर कीडी-मकोडे से लेकर कितने जीव-जंतु नजर आए होंगे। आपका एक पैर गिरे तो बिचारे यमलोक में पहुँच जाए। और उन अज्ञानी जीवों को क्या पता है कि हमको रास्ते पर नहीं चलना चाहिए।

आपकी अंतरात्मा बोल रही होगी....

''हे जीवों! मेरे प्यारे !! अब तुम मुझसे तो भय रखना ही नहीं। मैं आपको वचन दे रहा हूँ मेरे कारण से आपको लेश भी दुःख नहीं पहुँचेगा। आप मेरी वजह से मरण पाओ... यह तो दूर की बात... मेरी वजह से आपको पीडा हो यह भी दूर की बात... पर मुझे पता है कि मेरा स्पर्श भी आपको कदाचित् पीडादायक बने। तो मेरा आपको स्पर्श भी ना हो

जाएँ इसके लिए अत्यंत पुरूषार्थ करूँगा। ऐसा ही समझना कि मैं आपकी माँ के स्थान पर हूँ। बच्चे! यह माँ आपको दुखी नहीं होने देगी।''

प्रभु! यह होगा आपके अंतर का नाद ! रोम-रोम की गूँज!

और आप सिर्फ अच्छी-अच्छी भावनाओं का चिंतन करके बैठ जाएँ, ऐसे आप नहीं है। आप हो चारित्रपरिणति के धारक!

इसलिए आप विहार के हर समय एकदम उपयोग रखकर ही चलोगे यह स्पष्ट बात है।

प्रभु मैने आचारांग सूत्र में पढा है कि एकाग्रता के साथ नीचे देखकर चलते समय आपने आँखे झपकाना भी बंद कर दिया। और आपकी ऐसी आँखे देखकर गाँव के बालक कुछ अलग ही समझ बैठे और आपके मुँह पर धूल डालने लगे। पर ईर्यासमिति को चूक जाएँ वह आप नहीं!

सचमुच प्रभु! इस तरह से विहार करते ऐसे आपको देखने का लाभ हमको मिलता तो ? हम धन्य बन जाते। उन कीडे-मकोडों को भी यह लाभ नहीं मिला होगा, क्योंकि आँखे ही नहीं थी ना ।

(बीच में एक जानने जैसी बात कह देता हूँ कि प्रभु का प्रयत्न तो यही होता है कि एक भी जीव ना मरे... पर हकीकत में एक भी जीव ना मरे, ऐसा नहीं होता। क्योंकि केवलज्ञान के बाद भी केवली द्वारा जीवहिंसा मानी गई है। और वह भी सिर्फ शरीर को वायु का स्पर्श हो, और हिंसा हो इतना ही नहीं, परंतु उनके पैर के नीचे जीव आकर मर जाए.... ऐसा भी बनता है।

हमको ऐसा लगे कि 'केवली तो सब जानते ही है, तो फिर वे क्यों जहाँ पर जीव हो वहाँ पर पैर रखते है, यह तो उनकी घोर निष्ठुरता कहलाती है ....'

पर ऐसा नहीं है। केवली की सभी प्रवृत्ति भवितव्यता के अनुसार होती रहती है... इस विषय में यदि विस्तार से बोध पाना हो, तो धर्मपरीक्षा नाम के ग्रन्थ का अभ्यास करना।

प्रस्तुत में प्रभु का सख्त-अतिसख्त प्रयत्न तो होता ही है कि एक भी जीव को मरने ना दे। और उसके लिए ईर्यासमिति का भी पालन जोरदार करते है। और ऐसा होने के बावजूद जीव मरते भी है। पर उसमें प्रभु को बिलकुल दोष नहीं लगता। जीव जो अचानक ही अंदर घुस जाएँ... प्रवेश करें.. और मर जाएँ, इसमें प्रभु का योग उसके मृत्यु में निमित्त निश्चित बनता है, पर प्रभु अप्रमत्त होने के कारण उनको इस हिंसा के पाप का बंध नहीं होता।)

आ प्रथम मानव दीठो जेने जोई भयभीत नहीं थया,
दोडीने किंतु केडीनी नजदीक जई जोता रह्या,
अेम चिंतवे मृगलाओं वननी, केडीए तने जोइने,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(१७)

जंगलो में से होता आपका विहार।

वनस्पति का थोडा भी संघट्टा ना हो, ऐसे सख्त ध्यान के साथ आप वन की घास रहित पगडंडी पर ईर्यासमिति के व्यवस्थित पालन पूर्वक जा रहे है।

उस समय जंगल के डरपोक हिरण की परिस्थिति तो देखो....

वैसे तो इन सभी का स्वभाव ऐसा है कि तनिक आवाज भी आए तो भाग जाएँ। उसमें भी मानव को देखें, तो और अधिक दूर भागने लग जाएँ। भूत को देखकर जैसे बालक घभराए... ऐसा ही समझो ना .... ।

और स्वाभाविक ही है कि हिरनों को जंगली पशु फाड के खा जाते है, शिकारी बाण से छेद कर काट-काट कर मांस खाते है.... उनकी चमडी उतार लेते है.... और यह सब अन्य हिरनों ने वातावरण के असर के द्वारा भी अनुभव किया हो, तो सभी हिरनों के मन पर कैसी भयंकर असर होती है ना।

वैसे भी उनका स्वभाव जन्मजात डरपोक ही होता है।

फिर भी सभी के अनादि स्वभाव को बदलने की आपकी क्षमता गजब की है।

आपके मन में सभी जीवों के प्रति अद्वितीय स्नेहभाव है, जिसका स्पर्श उनको हो जाता है। वातावरण में ही उसका जबरदस्त असर होता है.... और वे हिरन आपको यानि बिलकुल अन्जान व्यक्ति को देखने के बावजूद भी घबराते नहीं है। उनको तो आनंद आता है आपके दर्शन करने में।

वे विचार में पड जाते होंगे कि यह मानव भी कमाल का है ना। हमारी जिंदगी में यह पहला व्यक्ति ऐसा देखा है कि जिसको देखने के बावजूद भी हमको भय नहीं लगता। उल्टा हम तो दौडते दौडते उनके नजदीक जा रहे है, पगदंडी के पास पहुँचकर इस महामानव को आँखे भर-भर के देखते रहे है।

प्रभु !

कैसा दृश्य होगा वह?

इस काल में हीरो-हीरोइन को देखने के लिए पागल के जैसे दौडते लाखों लोगों को देखा है। पर इन हीरो-हीरोइन के पास कोई भी पशु आता नहीं है।

(हा! पालतु कुत्ते की बात अलग है) और आपके पास तो...

वह जंगल, पगदंडी! उसमें से गमन करते ऐसे आप! आपके मुख उपर की प्रसन्नता! आपको और आपकी प्रसन्नता को देखने के लिए उमडते वह छोटे-छोटे हिरनों की टोली। उसमें माँ स्वयं के पुत्र को कहती भी होगी कि 'देखो-देखो ! यह मानव कैसा निर्दोष-स्नेही लग रहा है। सभी लोगों के लिए उठती गलत छाप अब इनको देख कर दूर हो गई।'

यह दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ इन हिरनों कों । आसपास के वृक्ष पर बैठे पंखीओं को।

इच्छा हो जाती है कि मैं तब हिरन क्युं नहीं बना?

प्रभु! हमारे एक प्रभुभक्त मुनि ने गाया है कि 'क्युं न भये हम मोर, विमलगिरी।' मैं शत्रुंजय के उपर मोर क्युं ना बना ?

वैसे ही ऐसी ऐसी भावनाएँ मुझे भी जागृत होती है ।

हाँ!

मुझे पता है कि सभी को आपके लिए ऐसा ही भाव जगें, वैसा भी नहीं है। वजैसे भव्य जीव आपका आलंबन लेकर संसार से तिरते है, पर अभव्य नहीं तिरते है। उसमें दोष अभव्यों का है आपका नहीं।

ऐसे आपके निमित से अच्छे आत्माओं का भयमोहनीय कर्म कमजोर हो जाता है। और उससे आपसे वे घबराते नहीं है।

पर जिनका भयमोहनीय मजबूत होता है। उनको तो आपका राग भी रोक सकता है। वे आपको देखकर दूर भागते है, इसलिए आपका प्रयत्न तो ऐसा ही होता है कि 'आपके निमित से किसी को भय ना हो'। इसलिए ही तो पगदंडी पर यदि आगे पशु-पक्षी हो, और आपको ख्याल आएँ कि 'वे मुझसे घबरा रहे है।' तो आप पूरा रास्ता ही बदल देते है। लंबे रास्ते से आगे बढते है। मानो कि अन्य मार्ग ना हो, तो आप वहीं खडे रह जाते है। और जब वे खुद जगह छोडकर जाएँ तब ही आप आगे बढते है।

यह है आपकी करूणाभावना!

यह है आपके जीवदयाका-अहिंसाका कोमल परिणाम!

वडलानी छाया तुच्छ लागे आ पुरूषना शरणमां,
भय ताप दूर भागी, जता आ मुखडु जोता वेतमां,
तुज चरण ओशींकुं करी निर्भय बनी हरणा सुता,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(१८)

वैशाख-जेठ मास की गरमी!

दुपहर का १२ बजे का समय!

नीचे धरती गरमागरम!

उपर आकाश में से अग्नि की बारीश!

न पैर के नीचे की आग सहन हो, न मस्तक के उपर की आग!

ऐसी गरमी में खेतों मे मानव और पशु घटादार वृक्ष के नीचे मस्ति से सो जाते है। शहरों में लोग ए.सी.-पंखे में १-२ घंटे निकाल देते है। पैर में पहनने के लिए चप्पल होती है सिर पर छाता होता है.... तो भी ऐसी गरमी में किसी को बाहर निकलने का मन नहीं होता। उस समय सभी मार्ग सुनसान बन जाते है।

जंगल में रहते पशु, ऐसे समय में स्वयं की खुराक को पूरा करके, तालाब-नदी में से पानी पीकर जंगल में वृक्षों के नीचे वड के वृक्ष के नीचे बैठ जाते है...

पुनः वे घूमने-फिरने लगते है।

यह है कुदरत की निश्चित व्यवस्था।

पर प्रभु! आप यानि आप। आप कुदरत की गोदी में जाने के बदले कुदरत को अपनी गोदी में लेते हों।

ऐसी भयंकर गरमी में, घटादार वड के वृक्ष होने के बावजूद, उनकी छाया होने के बावजूद वृक्षों से दूर, खुल्ले आकाश में... चूल्हे जैसी घरती पर और आग की वर्षा जैसी गरमी में साधना करने खडे रह जाते है। मीठा स्मित यह तो आपका जन्मसिद्ध स्वभाव ही है।

अकेले-अटुले आपने कौन से बल पर घंटों तक यह सहन किया होगा, यह तो आप ही जानते हों। पर कुदरत कैसी बदलती है? वह देखते है ।

वे हिरन।

प्रतिदिन वृक्ष के नीचे बेखबर सोने वाले की आदत वाले निर्दोष प्राणी।

आज आपको ऐसे इस तरह खडे देखकर विचार आया होगा कि 'यह कौन ! कौन! कौन? जो हो वह! पर वृक्ष की छाँव से इनके मुख की छाँव में अनोखा आकर्षण है। वृक्ष की छायां से इनके चरणों की छाया में अनोखी शांति है। इनके मुख को देखते ही, जंगली पशुओं का भय दूर भाग जाता है.... उपर नीचे की अग्नि का विस्मरण हो जाता है।

'चलो! तो आज इस नए वृक्ष के नीचे आराम करें,' ऐसा विचार कर निश्चिंत होकर सो जाते है।

हा! वृक्ष के नीचे तो तकिया मिलता नहीं था, यहाँ तो सुंदर मजे का तकिया भी मिल रहा है, प्रभु के उच्च चरण वही तकिया!

और दौडते आए हिरन। मस्तक आपके चरणों पर-तकिये पर रख दिया। भय तो एकदम निकल गया। करूणावतार तो आप थे ही, इसलिए। निश्चिंत होकर सभी सो गए। यह ताकत है आपकी साधना की। यह ताकत है आपकी Aura की।

'आ मानवीनी सौम्यमुद्रा प्रशमभाव पमाडती,
निष्ठुरस्वभाव गमावी मैत्रीभावने प्रगटावती'
ध्यानस्थ तुजने एक ध्याने ध्यावतो वनराजसिंह,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(१९)

'बचाओ, बचाओ!' मन में ही पुकार करता दौड रहा है एक हिरन। पर आशा नहीं उसको कि 'वह बच सके।' क्योंकि पीछे पडा है वनराज।

उसको उसकी खुराक चाहिए। ऐसे भी वह जन्मजात हिंसक तो है ही, उसमें भूख का दुःख मिल जाए तो बाकी क्या रहे? बडी-बडी छलांग मारकर सिंह अंतर घटा रहा है, तालाब के किनारे पानी पीते हिरन को सिंह की आवाज सुनते ही दौडना पड रहा था। पर बचना कदाचित् उसके भाग्य में नहीं था।

फिर भी प्राण तो सभी को प्यारे होते है। बचने के लिए अंत समय तक प्रयत्न कर लेने की इच्छा किसको ना हों ?

इसीलिए ही वह दौडा जा रहा था... दौडा जा रहा था...

पर आखिर वह थका-श्वास चढा!

वहाँ अचानक ही कोइ वस्तु के साथ टकराया!

हा! वह थे प्रभु आप।' ध्यान में मग्न बने आपके चरणों के साथ वह टकराया और वह थक कर वहीं बैठ गया। अब उसके पास चलने की ताकत नहीं है। श्वास चढ गया था, मौत का भय उसके पूरे शरीर को कंपा रहा था! उसकी नजर पीछे थी और सिंह को देखकर वह समझ गया कि बस ! अब दो मिनिट का खेल!

उसके पेट में जाने की पूरी तैयारी। पर हिरन को अब तक आपकी शक्तिका अंदाजा नहीं था।

सिंह क्रोध से, भूख से, निष्ठुरता से, क्रूरता से धडधडाता वहाँ आ पहुँचा! परंतु प्रभु की-आपकी अत्यंत शांत मुखाकृति पर उसकी दृष्टि गिरी और वह विचार करने लगा, और उसके कर्म भी कमजोर होंगे कि जिससे आपकी Aura की उसको बहुत जल्दी असर हो गई।

वह सिंह विचार कर रहा है कि

'यह कौन है? उसका पता तो नहीं चल रहा है। पर उसके मुख पर कोई ऐसी सौम्यता है... शांतभाव है... जो मुझे एकदम ठंडा बना रही है... मेरी क्षुधाको=(भूख) को भूला रही है।

और जिस हिरन को मैं मारने के लिए तैयार हूँ, उस हिरन के लिए मुझे अंतर में प्रेम उभर रहा है, मेरा भाई! मेरा बच्चा हो ऐसा मुझे लग रहा है।''

बस, अधिक समझने की-विचारने की ताकत सिंह की नहीं थी। पर तत्काल तो उसका मानसिक परिवर्तन हो ही गया और आगे बढा। हिरन समझ रहा है कि 'मेरी मृत्यु नजदीक आ रही है' पर, सिंह के भाव बदल गए थे। वह नजदीक आया और धीरे से उसने हिरन के उपर आगे के दो पेर प्रेम से रखे। हिरन को उसके वात्सल्यभाव का स्पर्श हुआ, और उसका भय घटता गया। उसके पश्चात तो वनराजने खुद की जीभ से हिरन के साथ बहुत दुलार भरी क्रीडा की। उस स्नेहभरी दुनिया में वह खो गया।

अंत में

वह प्रभु के सामने बैठ गया, एक नजर से प्रभु को और प्रभु की मुखमुद्रा को निहार रहा था। बहुत अच्छा लग रहा था उसे प्रभु का मुख देखना।

प्रभु आप ध्यान में!

वह सिंह ध्यानस्थ ऐसे आपके ध्यान में!

थोडे समय के बाद सिंहने बिदाई ली।

और हिरन को पक्की समझ आ गई कि 'मुझे जो जीवनदान मिला है, वह इस महापुरूष के प्रभाव से मिला है।' उसका मन कृतज्ञता के भाव से भर गया। उसकी आँखों में से उपकार स्मरण के हर्ष के आँसु टपकने लगे। उन आँसुओं से ही उसने प्रभु के चरणों

में प्रक्षालन कर लिया। अत्यंत नजदीक आई हुई मौत को दूर धकेल दे, उसके लिए ऐसी भावना प्रगटे उसमें आश्चर्य भी क्या था?

हिरन पूरी रात आपके सान्निध्य में बैठा रहा ।

सुबह आपने ध्यान को पूरा करके ईर्यासमिति के पालनपूर्वक विहार शुरू किया। हिरन भी मानो खुद के आत्मीय मेहमान को बिदा करने जा रहा हो, ऐसे पीछे-पीछे चलने लगा... जंगल की हद तक हिरन साथ में चला।

''आना, जल्दी पधारना!'' ऐसे शब्द तो हिरन को बोलने नहीं आते थे, पर उसकी आँखो में से बहते आँसू बहुत कुछ बयान कर रहे थे। ''मेरे जीवनदाता ! आप मेरे सर्वस्व हो। मेरी हद आ गई है, इसलिए आपके साथ मैं आ नहीं सकता। पर विनंती कर रहा हूँ कि आप मुझे भूलना मत, आपका सेवक मानना, कभी इस तरफ आओ, तो दर्शन देने पधारना.... जिन्दा रहा तो....''

प्रभु ! आप जहाँ तक दिखे, वहाँ तक वह हिरन आपको देखता रहा, रोता रहा' और अधिक रोने लगा.... जब आप दिखने बंद हुए तब आपके धूल में पडे पैरों की छाप को खुद के मस्तक पर लगाकर खुद की आत्मा को धन्य मानते हलके कदमों से पीछे फिरा।

यह है आपकी दुनिया!

आपकी साधना की दुनिया!

आपकी साधना के आस्वाद का अनुभव करती तिर्यंचों की दुनिया!

ऐ नारको तिर्यंच ने वळी मानवोनी चीसने,
श्रुतज्ञान बलथी सांभळी कंपारी छूटती आपने।
करूणाश्रुथी भीना थया
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(२०)

आपके समक्ष तो प्रत्यक्ष नरक के जीव नहीं थे....

आपके सामने प्रत्यक्ष रूप से कत्लखाने में कटते पशु नहीं थे....

आपके सामने प्रत्यक्ष रूप से दुःखी, रोगी, त्रस्त मानव भी नहीं थे....

पर आपके पास था श्रुतज्ञान....

जाने कि एक प्रकार का इन्टरनेट ही देख लो ।

उसमें आप इन नारकों की (नरक के जीवों की), पशुओं की, मानवों की चिल्लाहट सुन सकते थे।

आपको यह सब सुनना नहीं था, फिर भी आपको सुनाई देता! आपका मन करुणा से आर्द्र है ना!

और वह चिल्लाहट सुनकर आपको कंपकंपी छूटती।

नहीं! भय की नहीं, पर करुणा की। कदाचित् हताशा की।

'मैं इसमें से किसी को बचा नहीं सकता... इन सभी का क्या होगा...?'

और आपके नेत्रों में से टपक-टपक आँसु गिरने लगते।

सिर्फ संगमदेव के भविष्य के विचार से प्रभु आप रोयें हों, तो इस विश्व में अगणित जीवों को आते भयानक दुःखों के दर्शन से आप क्युं नहीं रोएँगे? आपके दो गाल क्युं आर्द्र नहीं होंगे?

प्रभु!

मुझे वह आर्द्र दो गाल देखने है।

क्योंकि मुझे मेरे दो गाल की झूठी हँसी को मिटा देना है। मेरे दो गाल की लाली को दूर करनी है।

पर यह शक्य बनेगा प्रभु! आपके ऐसे गाल को देखकर।

(बस प्रभु! आवश्यक निर्युक्ति + आचारांग (उपधानश्रुत अध्ययन) आदि ग्रन्थों के आधार से आपकी इस साधना की स्तुतियाँ बनाई है और उसका विवेचन किया है... आपके चरणों में यह स्तोत्रभक्ति समर्पित की है। आप इनको स्वीकार करो! यह भक्ति करने के पीछे एक कारण यह है कि हमारे अंदर भी ऐसी साधना प्रगटे.... 'जिसके गुण गाते है, उसका हमारे में प्रागट्य होता है...' यह न्याय है ना ।

'सहनशीलता शीखवी जेणे मने निजजीवनथी,
ऐ विद्यागुरूना चरणस्पर्शे आज हुं पावन बनी।
ऐम चिंतवी जाणे आ धरती हर्षथी पुलकित बनी,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(२१)

अनार्य देशो में जो भी आर्यदेश के लोग जाते, वे पूरी सुरक्षा के साथ जाते। हाथ में बडी मोटी लाठी रखते। क्योंकि वहाँ के जंगली कुत्ते शेर जैसे बडे और भयंकर! वे सिर्फ भोंकते नहीं, सिर्फ काटते नहीं, परंतु मांस के टुकडे काट-काटकर खाते। उसी अनार्यदेश में आप गए।

पर आपके साथ रक्षक कौन ? कोई नहीं।

आपके पास, आपके हाथ में कोई शस्त्र नहीं।

हा! आप ठान लो तो हजारों कुत्तों को पकड-पकडकर दूर फेंक सकते है.... पर यह सब करने के लिए आप तैयार ही नहीं थे।

और अंत में जो बनना था वह ही बन गया।

अनार्य देश में जंगली कुत्तों ने आपके हाथ-पैर का मांस खाया। दातों से काटा, खून निकाला... पर आप सहन करते ही रहे।

अनार्यों के किसी गाँव की और आप आगे बढे। आपको आते हुइ देखके वे क्रोधित हुए... 'अन्जान व्यक्ति हमारे गाँव में नहीं चाहिए, मारो उसे।' और मटके के टुकडे करके, टुकडो को लेकर आपकी तरफ दौडे। आपको घेर लिया। चाकु के जैसे तीक्ष्ण भाग को बालरहित मस्तक पर ठोक दिया, घुसा दिया। फुवारे में से पानी के भाँति मस्तक में से खून की धारा उछली।

'निकल यहाँ से। खबरदार, जो हमारे गाँव में आया तो।' बोलते गए और चाकु जैसे तीक्ष्ण टुकडों से घाँव करते रहे।

कितनों को पता नहीं क्या दुष्ट बुद्धि सुझी कि जैसे दांतो से गन्ने की छाल उतारने में आती है वैसे आपके शरीर में दाँत चुभाकर चमडी निकालने लगे।

यह सभी जंगली पशुओं के कच्चे माँस को तो खाते ही होंगे। आज उनको एक मनुष्य का कच्चा माँस खाने को मिला, इसलिए खुश-खुश हो गए। जैसे गन्ने के टुकडे दाँत से तोडते है वैसे आपके शरीर में से कच्चा माँस तोड तोड कर खाने लगे।

अहो भगवान!

आपने उस चाकु जैसे घाँव को अटकाने के लिए बीच में हाथ डालने का प्रयत्न भी नहीं किया।

आपने चमडी को उतारते, माँस खाते ऐसे लोगों से बचने के लिए भाग जाने का अथवा हाथ-पैर को खींच लेने का प्रयत्न भी नहीं किया....

आपने उनको उनका काम करने दिया...

तब आपकी विचार धारा स्पष्ट थी।

'उधार है मेरे सिर पर कर्मराजा का। वह मुझे चुकाना है। अब नया उधार मुझे खडा नहीं करना है।'

उन जंगलीओ ने खुद के कुत्तों को जान-बुझकर आपके उपर छोडे... परंतु आप यानि आप!

अरे वह संगम देव! आपको दुःखो से कंपित ना कर सका, तो अंत में आपके उपर हलके आरोप लगाने की अतिनीच कक्षा का प्रयत्न उसने किया।

आपके शरीर में प्रवेश किया। आप गोचरी गए, आपके द्वारा स्त्री का हाथ पकडा। स्त्री को खुद की तरफ खींचा। जबरदस्ती का प्रयत्न किया.... स्त्री चिल्लाई। लोग इकठ्ठे हुए। देव तो दिखे ही नहीं, सभी को ऐसा ही लगा कि आप ही ऐसे खराब कृत्य कर रहे हो। आपको जमीन पर पटक कर लातें मारते मारते आपको गाँव के बाहर ले गए। आपको बेहद खराब दिखाने में आया, पर प्रभु ! आप यानी आप! इतना सब होते हुए भी दूसरी ही क्षण में आप ध्यान में खडे होकर विश्व के जीवों की कल्याण भावना से भावित होने लगे।

उसी संगम ने दूसरे रूप में चोरी का प्रयत्न किया। जान-बुझकर पकडा गया और पूरा आरोप आपके उपर आया, 'मुझे सब यह मेरा बाप करा रहा हैं।, मैं तो लडका हूँ। और लोगो ने आपको ढोंगी साधु, चोर, बदमाश मानकर खूब मारा। बारह वर्ष में आपने जो सहन किया है, उसका तो बडा इतिहास है प्रभु।

इसलिए हम एक कल्पना कर रहे है।

आप जहाँ-जहाँ जाओं, वहाँ अधिकतर दुकाल पडता नहीं है। धरती हमेशा हरी-हरी रहती है। हम तो इसकी कल्पना इस तरह से करते है कि धरती विचारती है और

बोलती है कि 'ओ प्रभु महावीर! लोग ऐसे कहते है कि मैं=धरतीमाता बहुत कुछ सहन करती हूँ। सहन करने के विषय में मेरा नंबर १ है। पर मेरे विद्यागुरूदेव! यह सहन किस तरह से करना? यह तो आपने ही मुझे सिखाया है। आपकी इस घोर साधना को देखकर मुझे भी सहन करने का मन होता है और कर रही हूँ। कोई मेरे उपर चाहे जैसा आचरण करे फिर भी में सहन करती हूँ। लोगो को क्या पता ? कि मेरी इस अमाप सहनशक्ति का कारण तो मेरे विद्यागुरू ऐसे आप हो।

आज आप यहाँ पर आएँ, आपके चरणों का स्पर्श मुझे मिला, (प्रभु धरती पर चलते है ना? इसलिए धरती को प्रभु चरण का स्पर्श मिल गया ना!) मेरा पूरा देह रोमांचित-आनंदित बन जाता है प्रभु! (धरती हरी-भरी बन जाती है ना!) प्रभु! हमारे प्राचीन महापुरुषो ने भी आपकी इस तरह से स्तुति कि है कि 'जिनकी सहनशक्ति के पास पृथ्वी भी झांखी पडती है...' और सचमुच यह बात एकदम-एकदम सच्ची ही लगती है।

'आ आर्यदेश तणी प्रजा पूजनीय मुजने मानती,
साधनानी आडखीली ऐ भक्ति मुजने सालती,
ऐम चिंतवी डगला भर्या ज्यारे अनार्य दिशा भणी....,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(२२)

प्रभु आर्यदेश में तो बहुत सारे लोग आपको पूजनीय-वंदनीय मानने वाले थे। इसलिए ही उनके पूजन-वंदन लेने में आपके निकाचित कर्मो का क्षय नहीं होता था। उसके लिए जरूरी थे घोर दुःख! वह दुःखरूपी अग्नि यदि गरम हो तो ही सुवर्ण शुद्ध होगा.... कर्ममैल दूर होगा।

यह थी आपकी समझ।

टेढी खिल्ली में फसा हुआ कपडा जैसे बाहर नहीं निकलता, फट जाता है... वैसे इस वंदन-पूजन रूपी टेढी खिल्ली में आपको आपकी साधना फसी हुई और फटी हुई लगती... और इसलिए ही आपको यह भक्ति अच्छी नहीं लगती पर डंखती थी, परेशान करती।

और आपने यह कैसा निर्णय लिया? आपने ही हमको ना बोला है कि साधुओं को अनार्यदेशमें नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ संयम पालन शक्य नहीं है। पर आपने यह हमारे लिए स्थापित किए हुए निर्णय को पाला ही नहीं। आप स्वयं ही अनार्यदेश की तरफ चले गए।

यद्यपि आपकी बात बराबर ही है।

शूरवीर बाप खुद के छोटे बच्चों को घर के बाहर निकलने के लिए ना बोलते है, क्योंकि वह समझते है कि 'बच्चे के पास लडने की ताकत नहीं है!'। पर खुद तो युद्धमैदान में आगे रहकर जंग खेलते है।

प्रभु ! अनार्यदेश की बात तो जाने दो, परंतु हम तो आर्यदेश में भी जहाँ-जहाँ अनुकूलताएँ मिलती है वहाँ पर ही जाते है, अन्यत्र नहीं।

गुजरात में और उसमें भी सुरत-मुंबई-अहमदाबाद-पालीताणा जैसे क्षेत्रो में हमको बहुत अनुकूलताएँ मिलती है... तो हमको वहाँ पर ही रहना अच्छा लगता है।

वहाँ के उपाश्रय महल जैसे! अन्यत्र सब जगह झोंपडी जैसे!

वहाँ की गोचरी मन को अनुकूल! अन्य सब जगह प्रतिकुल!

वहाँ पानी मांगो तो दूध हाजिर! अन्यत्र सब जगह दूध मांगो तो पानी भी मुश्किल से मिले!

वहाँ भक्तो की टोली! अन्य जगह मक्खी-मच्छरादि परिषदो के बीच रहना!

हम बन गए सुखशील!

'सुख मिले तो भाग जाना... दुख मिले वहाँ जाना,' यह आपकी साधना का ज्वलंत उदाहरण मानो कि हम तो भूल ही गए।

प्रभु! हमको देना ताकत कि....

हम गुजरात छोडकर एम.पी., दक्षिण, राजस्थानादि क्षेत्रों में विचर सकें।

मेवा-मावा-फरसाण मिष्टान्नादि की गोचरी त्यागकर 'दाल-रोटी... बाकी सब बात खोटी' कहावत को जीवन में उतार सकें।

कंबलादि का त्याग करके पत्थर बनकर ठंडी सहन करनेवाले बनें।

अधिक हवावाली जगह का त्याग करके घुटनवाले उपाश्रय में रहने की ताकतवाले बने, उसमें हमारे शरीर के साथ हमारे कर्म भी घुटन के साथ नरम हो जाएँगे।

आपकी साधना में से ऐसा तो बहुत कुछ हमको प्राप्त करना है।

'हे आर्यपुरूष ! पधारो अम घर आंगणुं पावन करो,'
'ओ मुंडिया! तगडो छता भीख मांगतो केम तुं फरे'
निंदा-प्रशंसा उभयमां तुज मुखनी रेखा नहि फरी,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(२३)

इस जगत के लोगों के लिए सुना है कि वे विचित्र होते है। उन सभी को खुश रखना भगवान के लिए भी शक्य नहीं है।'

अजैनों का प्रसंग है।

शंकर-पार्वती पति-पत्नी का आकार लेकर एक टट्टु को (घोडे के जैसा प्राणी) साथ में रखकर चलते है। पत्नी बैठी है टट्टु के उपर। पति चल रहा है। सामने से कुछ लोग आ रहे है।

उन्होंने इन दोनो के देखकर कहा ''हट्! पत्नी के पीछे पागल।''

पति ने पत्नी को कहा कि ''देख। लोग क्या कह रहे है?''

पत्नी कहती है ''बात गलत नहीं है। आप नीचे चलो मैं उपर बैठु... उसमें आप

पत्नी के पीछे पागल ही दिखोगे ना। चलो, आप उपर बैठिए, में नीचे चलूंगी।'' इस तरह वे आगे बढे।

सामने आते लोग बोले। ''बेशरम! खुद टट्टु पर बैठ गया है, पत्नी को नीचे चलाता है। होश नहीं हे उसको! पत्नी को संभालना चाहिए ना...''

पति हँसा, ''बोल, अब?''

पत्नी ने कहा, ''दोनो टट्टु पर बैठ जाते है।''

इस तरह दोनों आगे चले।

सामने से आते लोग बोलने लगे, ''निष्ठुर है यह दोनो। छोटे से टट्टु पर दोनो चढकर बैठ गए, बिचारे को मार डालेंगे।''

आखिर दोनो नीचे उतरकर टट्टुको पकडकर चलने लगे।

सामने से आते लोगों ने जोर-जोर से हँसकर कहा, ''देखो इन दोनो मूर्खों को। यदि टट्टु पर बैठना ही ना हो, तो रखने का क्या काम? उसकी पूजा थोडी न करनी है।'' शंकरने पार्वती को समझाया ''देख, यह लोग कभी भी सुधरने वाले नहीं है। इन सभी के अभिप्राय कभी एक नहीं आएँगे, सभी को हम कभी खुश नहीं कर पाएँगे।'

इस कथा का सार यह है कि मानवों की मति कभी भी एक जैसी नहीं बनेगी। इसलिए ही जब आप आर्यदेश में विचर रहे थे, तब दोनो प्रकार के लोग आपके सामने आते।

जो सचमुच आर्य थे, समझु थे, त्याग की महिमा को समझने वाले थे। वे तो आप को देखकर अहोभाववाले बनते। यह तो कोई तेजस्वी राजकुमार लगता है, भर यौवन में इस मार्ग का स्वीकार किया है और घोर साधना करता है। घर घर में भिक्षा मांगकर स्वयं के अभिमान को तोडता है। यह तो पूज्यपुरूष है। उन्हें अपने घर बुलाकर अपने घर को पावन करना चाहिए।

और वे आपके पैर में गिरकर विनंती करते ''पूज्य पुरुष! पधारिए, पधारिए हमारे घर में। हमारा आंगन पवित्र कीजिए।''

पर दूसरी ओर वक्र लोग भी इस दुनिया में है ना! इसलिए वे तो आपको भिक्षा के लिए घर आते देखकर रास्ते पर फिरते ऐसे आपको देखकर गुस्से में आते थे.. और गाली जैसे शब्द बोल बैठते। ''अबे टकले! मुंडिया! शरीर है सशक्त ! उम्र है यौवन की ! और फिर भी भीख मांग रहा है। तुझे शरम नहीं आती। अरे तुं जितना मांगेगा उतना खाना देंगे पर पहले हमारे यहाँ काम कर! खेती कर! बर्तन घिस ! कपडे धो!'

आघात लग जाए ऐसा अपमान कर बैठते थे वे लोग!

प्रभु हमारी हालत कहुं?

हमको यदि लोग तिरस्कार देते है, तो मुँह चढ जाता है। हमको नहीं जाना है गोचरी ऐसा निर्णय कर बैठते है... दूसरों को गोचरी भेजते है।

पर धन्यवाद है आपको!

आपतो निंदा में या प्रशंसा में एकदम मध्यस्थ!

आपके मुँह की रेखा भी कभी बदली नहीं... मानो कि आप तो इन सबके लिए बहरे ही है।

वाह रे वाह!

वायु (गैस) होने के कारण मुँह पर पडती झुरीयाँ!

हर्ष होने के कारण मुँह पर पडती झुरीयाँ!

खेद होने के कारण मुँह पर पडती झुरीयाँ!

इन सभी झुरीयों को आपने कुचल डाली है... वाह रे वाह...!

आ साघाना प्राचीन भवोमां मुनि थइ करी हती अमे,
दुर्भाग्ये पाम्या पतनने तिर्यंच थइ भटक्या अमे
तुज दर्शने जाति स्मरी ध्रुसके रडे वनना पशु,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे ....(२४)

तिर्यंचगति की प्राप्ति का मुख्य कारण है माया-कपट!

साधुता का स्वीकार करने के प्रश्चात् शिथिलता का सेवन कर, यदि उन पापो की आलोचना-प्रायश्चित ना करें, गुरू से छुपाएँ, समाज को ठगे, अंदर अलग और बाहर अलग... साधु वेष का उपयोग आलोक की सभी प्रकार की सुविधाओं को भोगने में कर दे...

यह माया-कपट उन जीवों को तो अच्छे ही लगते है, पर जहरवाली खीर की भांति यह दोष उनको भारी पडेंगे।

तिर्यंच के आयुष्य का बंध होता है।

और वे कपटप्रचुर संयमी मानवभव-देवभव को गँवाकर पहुँचते है तिर्यंच की दुनिया में। जंगलों में हाथी-चित्ता-सिंह-हिरन-सांप-जिराफ... हजारों प्रकार की तिर्यंच जाति के स्वरूप में वे जीव उत्पन्न होते है।

बिचारों की क्या दशा!

गुस्सा करने वाले साधु की क्या दशा...? दृष्टिविष सर्प बने...

अहंकार करनेवाले साधु हाथी बने...

शिष्य की ईर्ष्या करनेवाले गुरू साँप बने...

सिर्फ माया से नहीं, पर अन्य भी ऐसे दोष से यह दुनिया उत्पन्न होती है।

पर प्रभु !

चंडकौशिक का भाग्य कैसा खिल गया है... आपके जैसे परमात्मा सामने चलकर उसका उद्धार करने गए थे... और पंद्रह दिन तक आपने उसके लिए भोग दिया था।

प्रभु !

जब आप जंगल में साधना करते होंगे, तब आपको खाने के लिए बहुत-से जंगली पशु आते होंगे... हाँ! आपको खाने आते होंगे! आपको मार डालने के लिए! पर जब आपके

पास आते है, आपको देखते है, आपकी पवित्र Aura में प्रवेश करते है कि तुरंत ही उनकी भावनाएँ बदलने लगती है....

जो दुर्भवी-अभवी होते है, उनकी बात जाने दो....

पर जो चंडकौशिक के जैसे हो, जो अच्छे होते हुए भी किसी भूल के कारण इस दुनिया में आ चुके हो, जिनको सुलभबोधि है....

वे तो विचार में गिरे हुए,

'एक नजर से आपको देखते है, आपकी मुद्रा को देखते है...

''यह क्या? इस तरह से खडा रहना? इस तरह से दो हाथ लंबे रखना? इस तरह से जागते जागते भी एकदम पत्थर की भाँति बन जाना... ऐसा सब तो कहीं पर देखा है... देखा नहीं... हम स्वयं ही किया है.... पर कहाँ?

हम तो ऐसे है नहीं, हम तो चार पैर वाले प्राणी! तो फिर? पर नहीं। ऐसा किया है यह तो पक्का।''

बिचार करते है पशु ...

एक साथ इकट्ठे होकर आपके आस-पास घेरा डाल देते है पशु....

उन हिंसकपशुओं की मानो कि एक चिंतनसभा इकट्ठी हुई हों....

और वह उहापोह करने के कारण धीरे-धीरे मतिज्ञानावरणीय कर्म के पडल टूटते जाते है, और अधिक स्पष्ट होने लगते है... और एक सुंदर मजे की क्षण में प्रगट होता है जातिस्मरण ज्ञान!

ओ हो हो! हम तो पूर्वभव में साधु थे, संयमी थे, महाव्रतों के धारक थे, सुखमय संसार को छोडकर सद्गुरू के पास हमने दिक्षा ली थी।

गुरूकुलवास में रहकर, गुरू की वाचनाएँ सुनकर,

गच्छवास में सहवर्तीओं की प्रेरणाओं को प्राप्त कर,

सूत्रार्थपोरिसी में शास्त्रों का परिशीलन करके हम भी जोरदार आराधना करने लगे थे। उमंग ऐसी थी कि इसी भव में केवलज्ञान प्राप्त करे...'। पर सब हमारी इच्छा के अनुसार ही हो ऐसा हमारा भाग्य कहाँ?

जागृत हुआ हमारा दुर्भाग्य!

कोइ खराब निमितमें हम फँस गए।

कभी विषयों में कभी कषायों में लंपट बनते है....

बिगड गई हमारी जिंदगी.... उस समय हमको हजारो हितोपदेश देने मे आए थे, पर सब हुआ पत्थर पर पानी!

और एक खराब पल में हम तिर्यचों की दुनिया की टिकिट रिझर्व कर बैठे। बेहोश ऐसे हम पूरी जिंदगी बेहोश रहे। होंश में लानेवाले निष्फल हुए। हम हमारी मस्ती में रहे

और एक दिन मौत आकर दरवाजे पर खडी हुयी। हमको उठाकर लेकर गया डाल दिया हमको पशुखाने में!

अ रे रे... क्या हालत हुई हमारी।

कहाँ जाना था और पहुँच गए कहाँ।

इस महात्मा में परमात्मा के दर्शन से आज यह सच्ची हकीकत जानने को मिली, ओ भगवान । हमारी इन भूलो की बहुत माफी मांगते है। इस मानवभव में हजारों उपदेश से भी हम नहीं सुधरे, पर इस तिर्यंचभव में आपके दर्शन से हुए जातिस्मरण के प्रताप से अब सुधरना है..''

प्रभु ! यह है उन पशुओं का संवेदन!

बिलख-बिलखकर रोएं वे पशु...

दुखों से रोनेवाले कुत्ते-बिल्लीयों को तो देखा है, पर इस पश्चाताप से रोनेवाले पशुओं को देखने का अवसर हमको मिला नहीं है।

प्रभु ! डर यह लग रहा है कि हमारा यह साधुभव भी ऐसा तो नहीं जाएगा ना?

हम हार नहीं जाएँगे ना?

शास्त्रों की बातें समझते हुए भी हम सुधरते नहीं है।

गुरूजनो के हितोपदेश समझते हुए भी हम बदलाव नहीं लाते।

लोगों को अनेक उपदेश देते है, फिर भी वह उपदेश हम नहीं स्वीकारते, प्रभु!

हम पशु तो नहीं बनेंगे ना ?

उन पशुओं को तो आप मिल गए, इसलिए उनकी चिंता तो दूर हो गई, पर हमको आप ना मिल तो ? किसको पता, हमारा भाग्य कैसा होगा? बहुत ही डर लग रहा है नाथ। 'आप बचाना' ऐसी प्रार्थना नहीं करनी है, पर 'आप हमको सुधार दो, आप हमको बदल दो...' ऐसी प्रार्थना करनी है।

आपकी ताकत है मुझे-हमको सुधारने की!

हमको सुधरना है, आपको हमें सुधारना है।

मेरे स्वामी ! बिनंती मानना हाँ!

अप्रमत्तताना टोच शिखरे वीर! आप विराजता,
निद्रा छे वैरिणी माहरी ऐम जाणी दूर भगाडता,
घेराय जो आंखो तो वनमां शीघ्रगतिए चालता...,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (२५)

भगवन् ! हिमालय पर्वत की तलेटी से लेकर अंतिम एवरेस्ट शिखर तक पहुँचना यह यमराज के साथ गले मिलने जैसा है। अच्छे अच्छों के प्राण निकल गए साहस करके... फिर भी साहसवीर साहस करते है और सफलता भी प्राप्त करते है। वे पाँच प्रमाद नीचे बताएँ है।

(१) दारू (२) विषय (३) कषाय (४) निद्रा (५) विकथा

इन पांचो का त्याग करने में आवे यानि प्राप्त होता है अप्रमाद।

यह समझ लो कि यह पूरा अप्रमाद पर्वत हमको चढना है, अंतिम शिखर तक पहुँचना है।

उसमें दारू नामका प्रमाद तो हमने इस भव में किया ही नहीं, इच्छा भी नहीं! पर बाकी के चार प्रमाद का त्याग तो भारी है, उससे छूटना अत्यंत कठीन कार्य है।

अब प्रभु ! आपकी बात....

दारू आपके जीवन में नहीं है....

आप जंगलों में रहते हो, इसलिए पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय भी आप के संपर्क में कम ही आते है। इसलिए विषय नाम का प्रमाद भी आप से दूर हो गया है।

कषाय करने के लिए निमित्त तो चाहिए ना? आप तो अकेले ही रहते हो, आप किसके उपर कषाय करोगे? इसलिए कषाय का त्याग भी आपके लिए सुलभ है। विकथा का त्याग भी आपके लिए सरल है, क्योंकि आपके साथ कोइ है ही नहीं कि जिसके साथ विकथा कर सकों।

ऐसे आपके लिए चार प्रमाद का त्याग तो एकदम सरल बन गया है... पर एवरेस्ट शिखरसमान निद्रात्याग तो प्रभु! भलभलों के लिए कठिन है। क्योंकि निद्रा वो तो शरीर के साथ जुडी हुई है और शरीर तो आत्मा के साथ हमेशा ही है। निद्रा के लिए कोई निमितो की आवश्यकता नहीं है (दर्शनावरणीय कर्म तो सभी को होते ही है... तो उसकी विचारना महत्व की नहीं है, पर जिस तरह से विषय-कषाय-विकथादि प्रमादहेतु बाह्यनिमितों की जरूरत है, वैसी जरूरत नींद के लिए नहीं होती)।

अधिक आश्चर्य तो यह है कि निद्रा लाने के लिए पूरा विश्व प्रयत्न करता है, निद्रा आए तो उसको अच्छा मानते है, निद्रा आए तो उसे आरोग्य की निशानी गिनते है, निद्रा आए तो परमसुख लगता है...

अरे! आपने आपके साधुओं को विषय-कषाय की छूट नहीं दी। आपने आपके साधुओं को विकथा की छूट नहीं दी... पर आपने आपके साधुओं को रात्रिमें निंद्रा की संमति दी है।

आप भी समझ रहे हो कि चौबीस घंटे की आराधना के लिए मेरे साधुओं को निद्रा की जरूरत पडेगी ही। इसलिए तो संथारा+उत्तरपट्टा यह दो उपकरण देने में आए। रात्रि के दो प्रहर की निंद्रा रखने में आई (स्थविरों के लिए एक प्रहर)। ऐसे तो निंद्रा मानो कि अच्छी ही लगे....

पर आपकी तो प्रभु। बात ही न्यारी है।

हम सभी दूसरे सभी प्रमादों के त्यागी होंगे, इसलिए ही हिमालय के उपर=अप्रमाद के उपर चढने वाले होंगे... पर निंद्रात्याग वह अप्रमाद का एवरेस्ट शिखर हे.. वहाँ जो पहुंचे, वही सच्चा विजयी!

वो टोच प्राप्त करली है आपने ।

हाँ ! केवली बनने के बाद तो वैसे भी कर्मों के अभाव के कारण से निंद्रा नहीं आती.... परंतु साधनाकाल के दरम्यान तो सभी ही कर्म सत्ता में पडे हुए ही है, निंद्रा लाने वाले कर्म भी ।

पर आपने तो जबरदस्त युद्ध शरू किया निद्रा के साथ।

''यह मेरी वैरीणी है, मेरी शत्रु है.. उसको मैं कभी मेरे आत्मघर में प्रवेश ही नहीं दूँगा।'' ऐसी जबरदस्त भावना आपके रोम-रोम में बसी थी। और इसलिए ही आप बारह वर्ष तक जमीन पर सोए नहीं। आप बैठे नहीं। आपने टेका नहीं लिया... काउसग्गध्यान को पकड के रखकर आपने निंद्रा को हमेशा दूर ही रखी है। वह चुडैल आपको कभी परेशान करने आती, तब आपकी आँख भारी हो जाती, तब आपको तुरंत ही विचार आ जाता कि यह निंद्रा नाम की चुडैल मेरे आत्मा में घुसने का प्रयत्न कर रही है।'

पर आपकी क्या प्रज्ञता!

उस चुडैल को भगाने का उपाय आपने ढूंढ लिया...

आप तब जंगलमें वृक्षादि के नीचे तेजी से चलने लगते, और तेज चलने से आपकी नींद उड जाती। थोडे ही समय में आप पुनः स्वस्थ बन जाते। आप खुश हो जाते।

प्रभु! आपकी यह निद्रा के साथ युद्ध की साधना जिन्होंने देखी होगी वह धन्य है!

देखिए प्रभु!

बारहवें गुणस्थानक पर निद्राप्रमाद का विच्छेद माना है। उसका मतलब यह है कि बाकी के चार प्रमाद तो निकल ही गए है, पर अंतिम तक रहनेवाली दुश्मन है निद्रा!

और प्रभु!

हमको तो यदि नींद आती है ना, तो हम नींद को भगाने के बदले सीधे ही संथारा में जाकर सो जाते है।

हमको यदि गहराई से नींद आए ना, तो 'अरेरेरे! मैने यह घोर पाप किया।' ऐसा दुःख हमें कभी नहीं होता।

हमको यदि नींद में ठंडी गरमी के कारण विघ्न आते है, तो ऐसा ही लगता है की 'हट् ! आज नींद बिगडी।' हमको तो नींद बिगाडने वालों पर गुस्सा ही आता है....

नींद तो मानो हमारी प्रियतमा!

नींद तो मानो हमारी प्रियसखी!

अब आप ही कहो,

आपके और हमारे बीच में कैसे मेल होगा?

हम आपके शासन के साधु किस तरह से कहलाएँगे?

हम आपके शासन के सेवक किस तरह से कहलाएँगे?

फिर भी

आपके इन गुणों के प्रति हमको अतिराग है,
हमारे इस दोष के प्रति हमको तिरस्कार है,
तो एक दिन ऐसा भी आएगा कि
कोई हमारे लिए हमारे सामने यह स्तुति बोल रहे होंगे...
उस धन्यातिधन्य दिन की हम राह देखेंगे।

वहेता नदीना नीर पत्थरसम बने जे कालमां,
ऐ माघ मधराते नदीकांठे उभा तमे ध्यानमां।
बे हाथने पहोळा करीने घोर ठंडी वेठता,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (२६)

प्रभु की विहारभूमि अधिकतर बिहार!

उस तरफ के प्रदेशमें सख्त ठंडी पडती है, यह हम सब ही जानते है। और उस तरफ प्रभु यदि शहरों में या गाँवों मे रहते होते तो उनको दो फायदे होते। आसपास में घर-महल-हवेलीयाँ होने से आवाज करता हुआ ठंडा हिम पवन यदि आता तो वह परेशान नहीं कर सकता। जैसे बाहर जितना भी ठंडा पवन हो, पर हम रूम में बैठे होते है, तो चारों तरफ दिवाल होने से वह ठंडा पवन हमको पीडा नहीं देता है ना?

घरो में रसोई बनें, पानी गरम होता है... इसलिए हजारों घरो में हजारों चूल्हे प्रगटते है... उसकी गरमी वातावरण में फैलती है, तो थोडी बहुत तो ठंडी कम होती ही है।

परंतु प्रभु रहते थे, जंगल में.... खुल्ले मैदान में....
वहाँ हवाँ को रोकने वाली दिवाल नहीं,
वहाँ ठंड को कम करनेवाली चूल्हे की अग्नि नहीं थी...
और आगे....

ऐसी जगह पर भी नदी का किनारा और नदी से दूर का प्रदेश.... इन दोनों मे भी काफी फरक पडता है। नदी में बहता पानी होने से, किनारे पर ठंडी का प्रमाण बढ जाता है। दूर के प्रदेशमें किनारे से कम ठंडी होती है ।

और आगे...

ऋतु तीन है। उसमें शरद की ऋतु में सख्त ठंडी होती है। उसमें भी पोष-माघ महिना तो हदपार करता है, उस समय की ठंडी यानि ऐसा ही समझो कि नदी का बहना पानी मानो बरफ बन जाता है, मानो पत्थर बन जाता है।

पुनः याद करते है...
पोष-माघ मास... पानी को बरफ बनावे ऐसी ठंडी....
बिहार जैसा अतिठंडीवाला प्रदेश..
गाँव, शहर नहीं, पर जंगल-मैदान...

हम पाटण में रूके हुए थे। तब दुपहर १२.०० बजे गोचरी जाते थे, तभी भी ठंडी

से बचने के लिए कांबली पहनते, गोचरी वापरते समय भी कांबली पहनते। जहां सीधेसीधी धूप आती.... ऐसी जगह पर हम दुपहर में १२.०० बजे बैठते... और उसमें हमको अधिक शाता का अनुभव होता।

इस पर से हम कल्पना कर सकते है कि प्रभु! आपके सामने जो शीतपरिषह आया वह कैसा कातिल होगा? और प्रभु! सच्ची बात करूं? हम तो उपाश्रय की हरेक रूम के हरेक खिडकी-दरवाजे बंद करके संथारा करते थे। अरे! दरवाजे के नीचे एकदम कम जगह खुल्ली रह जाती, तब उसे भी कंबलों से बराबर दबाकर ढंक देते थे, जिससे उसमें से थोडी भी हवा अंदर ना घुसे।

काम्बली+कंबल ... दोनों ओढतें...

प्रभु इतना सब करने के बाद भी और एक वस्तु बाकी रहती है कहने की! हमारी सुखशीलता की और हमारी दुःखभीरूता की! वह वस्तु है **संकोचाना, बकुची बांधकर सोना..**

हाथ-पैर शरीर सब संकुचित करके सोते...

और आपकी बहादुरी तो गजबकी!

नदी किनारे एकदम खुल्ले शरीर में आप खडे रहते.... और दो हाथ को फैलाकर घोरातिघोर ठंडी को आप मस्ती से सहन करते।

प्रभु ! आप पत्थर हो या जीव? उसकी हमको शंका होती है। जीव को पीडा होती ही है, पर आप तो हँसते हँसते खडे रहते हों।

ऐसा सामर्थ्य हमारे में कब प्रगट होगा?

तुज हाथ-पग पकडीने म्लेच्छों आभमां उछाळता,
कांटाने पथरानी भूमिमां जोरथी तने पटकता,
रक्तरंजित धरती त्यागी पलमां काउसग्ग धारता...
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (२७)

अनार्यदेश के जंगली लोग! म्लेच्छ!

'धर्म' शब्द भी सुना नहीं, तो धर्म आचरण की बात ही कहां? मारा-मारी, काटना-लूंटना यही उनका धर्म!

आपने प्रवेश किया ऐसे अनार्यलोगों के देश में। उसमें कोइ जंगल जैसे प्रदेश में से पसार होते ऐसे आपको, वहाँ भटकते जंगलीमनुष्यों ने देखा।

मश्करी करना, दूसरों को दुःखी करना, ऐसा उन सभी का जातिगत स्वभाव! आपके पास आए, म्लेच्छभाषा में कुछ कहा पर आप तो जवाब ही कहाँ देते? सहन करने के लिए ही तो आप निकले थे।

आपकी इस उपेक्षा ने क्रोधाग्नि में घी का कार्य किया।

उन्होंने एक ही क्षण में निर्दय निर्णय ले लिया।

वहाँ उन्होंने एक जगह की शोध की जहाँ पडे थे कंकर... तीक्ष्ण पत्थर! आरपार

निकल जाए वैसे कंकर...! और उन्होंने आपको पकडा। चार लोगों ने दो हाथ और दो पैर पकडकर आपको उठाया, आपको अद्धर किया, घोडीएँ में बालक जिस तरह आडा पडा हों उस तरह उन पापीओं के आठ हाथों में आपका देह लटक रहा था।

माँ जिस तरह बालक को झुलने में झुलाती है, वैसै शुरूआत में उन्होंने आपको बराबर झुलाया। खडखड हँसते जाते है, विचित्र आवाज करते जाते है, बिभत्स मुँह से आपको घबराते है... और अंत में पूरी शक्ति इकट्ठी करके उन्होंने आपको आकाश में उछाला और सभी दूर हट गए... आकाश में उपर तक उछलता ऐसा आपका शरीर जोर से, धडाम से नीचे गिरा... कांटे पत्थर ओर कंकर पर! तीक्ष्ण कांटे शरीर में पूरे के पूरे घुस गए। पत्थरोने कंकरोने चमडी को काट दिया, लहू (खुन) की धारा बहने लगी, धरती बन गई लाल...

प्रभु ! रास्ते में एक कंकर लग जाए तो हमको क्या होता है? यह हम क्या नहीं जानते... तो उस समय आपको कैसी पीडा हुई होगी? वह तो सिर्फ कल्पना से ही जान सकते है।

पर

'उफ! ओह! बाप रे! हाय....' ऐसे कोई भी उद्‌गार आपके मुँह से न निकले।

आपके मुख पर वही मीठा हास्य!

आप तो दूसरे ही पल लाल-लाल धरती पर खडे हुए।

'अप्पाणं वोसिरामि' बोलकर पुनः ध्यान में खडे रह गए।

आपकी यह प्रवृत्ति म्लेच्छों को पसंद ना आई। पुनः उन्होंने आपको उठाया, उछाला-पटका... आप पुनः खडे होकर कायोत्सर्ग में।

आखिर बार-बार ऐसा करने के बाद म्लेच्छ लोग थके, पर प्रभु! आप तो आप ही रहे।

यह सब जब हम सुनते है ना, प्रभु ! तब हमको हमारी देहलालसा बहुत खटकती है। 'आपके मार्ग से लाखों योजन हम दूर है' ऐसी गीत की कडियाँ सचमुच सच्ची लगती है। अरे, डोक्टर बहुत धीरे-धीरे एक इंजेक्शन भी देने वाले हो तो भी मन घबरा जाता है। गोली से काम हो जाए तो अच्छा ऐसे विचार करने लगते है। इंजेक्शन देने मे जरा हाथ भारी लगे तो 'उंह, ओह' निकल ही जाता है।

हम 'महावीर के संतान' किस तरह कहलाएँगे? हमारे कारण आप का नाम कलंकित हो रहा है प्रभु ! ऐसा मुझे लगता है.... माफी देना....

निश्चल तमारा देहने थड झाडनुं मानी लइ,
खंजवाल दूर करवा बलद खणता कपालने जोरथी।
तारा परमपावन शरीरना स्पर्शथी पुलकित थता,
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (२८)

प्रभु गाँव के बाहर निर्जन जगह में कायोत्सर्ग ध्यान में खडा रहना यह आपका

नित्य आचार था। १२ वर्ष की साधना में अधिकतर आपने यही किया है।

आपका कायोत्सर्ग सचमुच काया का ही उत्सर्ग था। आप बन जाते थे वृक्ष के थड समान अक्कड। न हिलो, न चलो... मेरू भी कम्पता नहीं और आप भी कम्पते नहीं।

यह एक बात।

और अन्य बात,

गाय-सांढ का स्वभाव हमने देखा है... उनको जब मस्तकादि भाग पर खुजली आती है तब कोई कडक भाग के साथ खुद का मस्तक घिसते है। (स्कुटर के भाग के साथ मस्तक घिसते गाय-सांड को बहुतबार देखा ही है ना!) यदि गाय आदि प्राणी है कि जो शाम के समय जंगल में चारा चरकर गाँव नगरमें वापस आती है, पालतु गाय आदि होती है... तो वे आपको रास्ते में देखते है.... दूसरी और खुजली करने की तत्पर तो होती ही है। आपकी स्थिरता देखकर वे बिचारे यह समझते है कि 'यह तो कोई वृक्ष का थड है'। और रोज के संस्कार के अनुसार वे तो दौडते-दौडते आपके पास आती है और आपके शरीर के साथ खुद का मस्तक घिसने लगती है। प्रभु ! हमारे साथ यदि ऐसा बने, तो हम तो घबरा ही जाएँगे।

पर इसलिए तो हम प्रभु नहीं है! और आप नहीं घबराते, इसलिए ही तो आप प्रभु हो! अरे, घबराने की बात तो दूर रही, पर बालक मां कि गोद में पहुँचने का आनंद कैसे पाए? ऐसा आपका परमपवित्र शरीर उनके लिए सगी माता की गोद समान बनता होगा। उसका स्पर्श पाकर कोई अद्भूत आनंद का अनुभव उनको हो रहा होगा।

वह तो मैं सांढ बनु तो ही मुझे पता चले ना?

पर ऐसे सांढ बनने का मुझे सौभाग्य चाहिए प्रभु!

भवितव्यता नंचावे जेम तेम नाचता जीवो बधा,
संसारना आ रंगमंचे कोईनुं नहि चाले कदा,
माध्यस्थ्यपरिणति विकसती ज्यारे तमारा हृदयमां....
त्यारे तमोने जेमणे जोया हशे ते धन्य छे .... (२९)

अनुभव ना हो, तब अशक्य विषयों के लिए भी मानव के मन में उत्साह होता है। पर जैसे जैसे उसे अनुभव होता जाता है कि 'यह वस्तु तो अशक्य है। बाद में उसका उत्साह उपेक्षा में बदल जाता है।

घर में किसी को केन्सर हो तो संबंधी लोग सख्त दौडभाग करते है। केन्सर मिटाने के सभी उपाय आजमा लेते है... पर महिनों के अनुभव के बाद जब उनको लगे कि 'इनको बचाना मुश्किल है,' तब वे शांत बन जाते है। हाँ ! उनके प्रति प्रेम टूटता नहीं, उनके प्रति करूणा घटती नहीं, पर अब तक वह करूणा उनके दु:खों को दूर करने के लिए सक्रिय थी, 'अब वे दु:ख दूर हो ऐसे नहीं है' ऐसा ख्याल आने से माध्यस्थभाव आ जाता है। उसके मृत्यु की मनोमन तैयारी हो जाती है।

भारत में रोज के लाखों पशुंओ की कत्ल होती है, हमको उनकी करूणा भी है, पर हम वह अटका नहीं सकते है... इसलिए उपायाभाव नापसंद होते हुए भी माध्यस्थ्य। भारत में प्रतिदिन हजारों व्याभिचार-बलात्कार-लूटपाट होती है, हमको वह सब अच्छा नहीं लगता है, फिर भी अपनी अशक्ति का पता चलते ही माध्यस्थ लाना ही पडता है।

प्रभु ! मुझे लगता है कि आप भी इस ही कक्षा में से पसार हुए होंगे।

नंदनराजर्षि के भव में आपको तीव्रतम भावना हुई कि 'मैं सभी को शासनरसी बनाऊँ।' यह भावना इतनी तीव्र थी किर आप उसकी शक्यता-अशक्यता का भी विचार ना कर सके। और वह अच्छा ही हुआ। क्योंकि इस भावना के प्रताप से ही आपने तीर्थंकर नामकर्म बांधा, और आप तीर्थंकर बनें, हम सब के नाथ बने।

पर धीरे-धीरे आप अनुभवी बनते गए, आपका ज्ञान परिपक्व बनता गया, आपको स्पष्ट ख्याल आ गया था कि मेरी भावाना किसी भी काल मे पूर्ण होनेवाली नहीं है। मेरे जैसे अनंतानंत तीर्थंकर इकट्ठे होकर भी यह कार्य कर नहीं सकते। अरे, अभव्य तो बाकी ही रहनेवाले है, पर भव्यों का भी अनंतवाँ भाग ही शासन रसी बनकर मोक्ष प्राप्त करनेवाला है। इसलिए मुझे धरती पर उतरना ही पडेगा। सिर्फ भावनाओं से वास्तविकता पलटने वाली नहीं है।

है एक पदार्थ भवितव्यता के नाम का!

जिसके सामने मेरे जैसे तीर्थंकरों का भी कुछ नहीं चलता है। यह सब संसार के जीव भवितव्यता नाम की महादेवी की मानो कठपुतलीयाँ है। वह जैसे नाच नचाती है, ऐसे इस संसार के जीव नाचते-कूदते है, किसी का कुछ चलता नहीं है।

मैं लाख मेहनत करूं तो भी जो जीव की भवितव्यता ही अनंतकाल भटकनेवाली है, उसको मै बचा ही नहीं सकता। जिसकी भवितव्यता ही नरकगामी बननेवाली है, उसको मैं स्वर्गगामी बना नहीं सकता।

प्रभु ! अंतिमभव में आपके पास यह भावना बहुत विकसित होती रही। पूर्व से तीसरे भव में आपको इन सभी का ज्ञान नहीं था ऐसा नहीं, परंतु अनुभव नहीं होने के कारण आपका उल्लास बहुत था, पर उस उल्लास ने आखिर अनुभव में से पसार होने के कारण माध्यस्थ्य भाव का स्वरूप धारण कर लिया था।

प्रभु ! करुणा भावना मरती नहीं है, पर करूणाभावना ने खुद का स्वरूप बदल दिया है, मानो वेषपरिवर्तन ही कर लिया।

यानि

अंतिम भव में माध्यस्थ्य भाव की पराकाष्ठा! इसलिए ही तो क्षपकश्रेणी और केवलज्ञान! (अमाध्यस्थ्यभाव में क्षपकश्रेणी लग नहीं सकती और प्रभु के अंतिम भव में प्रायः करूणा का अतिरेक कम देखने को मिलता है। वे आत्ममस्ती में लीन रहते है... पुनः ध्यान में जीवोंकी करूणा नहीं है.... 'मर गई है...' ऐसा मानना नहीं है, सिर्फ उसकी गौणता, उसका परिवर्तन ही मानना है।)

*

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

1. कल्याण मंदिर, 2. रघुवंध (1-2 सर्ग), 3. कीरातार्जुनीच (1-2 सर्ग), 4. शिशुपालवध (1-2 सर्ग), 5. नैषधीचचरितम् (1-2 सर्ग) श्लोक, अर्थ, समास, अन्वय, भावर्थ सहित.

न्याय सिद्धांत मुक्तावलि (भाग 1-2) गुजराती विवेचन सहित.

व्याप्तिसंचक... चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित * सिद्धान्त लक्षण (भाग 1-2) चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित

सामान्यनिरूक्ति (गुजराती विवेचन) * अवच्छेदकत्वनिरूक्ति (गुजराती विवेचन)

आगम ग्रन्थो

ओधनिर्युक्ति (भाग 1-2)	द्रोणाचार्य वृत्ति + गुजराती भाषांतर (प्रताकारे)
ओ.नि. सारोद्धार (भाग 1-2)	विशिष्ट पंक्तिओ उपर विवेचन (प्रताकारे)
दसवैकालिक सूत्र (भाग 1 से 4)	हारिभद्रीवृत्ति + गुजराती भाषांतर
आवश्यक निर्युक्ति	(हारिभद्रीवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित भाग 1 से 8)
उत्तराध्ययन सूत्र	(शांतिसूरिवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित अध्ययन-1)
उपदेशमाला-सिद्धर्षिगणिवृत्ति	(54 गाथा) (गुजराती भाषांतर सहित)

सिद्धान्तरहस्यबिन्दुः (ओधनिर्युक्ति की विशिष्ट पंक्तिओनु रहस्य खोलती नई चन्द्रशेखरीया संस्कृत वृत्ति)

संयम-अध्यात्म-परिणतिपोषक ग्रन्थो

सामाचारी प्रकरण (भाग 1-2)	चन्द्रेशखरीयावृत्ति गुजराती भाषांतर सहित (दशविध सामाचारी)
योगविंशिका	चन्द्रेशखरीयावृत्ति सहित

स्वाध्यायीओ खास पढ़ें

स्वाध्याय मार्गदर्शिका (सिलेबस) * शास्त्राभ्यासनी कला (ग्रन्थों को कैसे पढ़े ? उसकी पद्धति)

मुमुक्षु - नूतन दीक्षित - संयमी के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

* मुनिजीवन की बालपोथी (भाग 1-2-3) * संविग्न संयमीओने नियमावली

* हवे तो मात्र ने मात्र सर्वविरती

* गुरूमाता * वंदना * शरणागति * महापंथना अजवाला
* विराट जागे छे त्यार * त्रिभुवनप्रकाश महावीर देव
* महाभिनिष्क्रमण * ऊंडा अंधारेथी * विरागनी मस्ती

} ये नौ पुस्तकें को प्रत्येक आत्मार्थीअे को अवश्य पढ़नी जैसी है...

* धन ते मुनिवरा रे... (दस विध श्रमणधर्म पर 108 कडी + विस्तृत विवेचन)
* विश्वनी आध्यात्मिक अजायबी (भाग1-2-3-4)... (450 आसपास श्रेष्ठ प्रसंगो)
* अष्टप्रवचन माता... (आठा माता उपर विस्तृत विवेचन)
* महाव्रतो... (पाँच महाव्रतो उपर विस्तृत विवेचन) * जैनशास्त्रोना चूटेला श्लोको भाग1-2 (अर्थ सहित)
* आत्मसंप्रेक्षण... (आत्माना दोषो केवी रीते जोवा? पकडवा ? अेनु विराट वर्णन)
* मुमुक्षुओने मार्गदर्शन... (दीक्षा लेवामां नडरतभूत बनता अनेक प्रश्नो नुं समाधान)
* 350 गाथानु स्तवन (भाग 1-2-3)... (पांच ढाळ उपर विस्तुत विवेचन सहित)
* सुपात्रदान विवेक (श्राविकाओने भेटमां आपवा-साची समज आपवा मंगावी शकशो)
* आत्मकथा (विरतिदूतनी 11 आत्मकथाओनो संग्रह) * दसवैकालिकचूलिकानु विवेचन
* शल्योद्वारा (आलोचना करवा माटे उपयोगी सूक्ष्तम अतिचार स्थानो नो संग्रह)
* धन धन्नो अणगार रे * संघ मारो भगवान * शासन प्रभावना * यशोदा (गुज.) * यशोदा
* चतुर्विधसंघने मुंझवता प्रश्नो (भाग 1 से 4) * मा ते मा * माँ यानी माँ

उववुह, थीरीकरण, वात्सल्य, धर्म परिक्षा (भाग 1 से 3), आराधक विराधक चतुर्भगी, कूपदृष्टांतविशदीकरण

विरतिदूत मासिक **1 थी 120 अंक नो आखो सेट जेने पण जोइये, ते मेळवी सके छे.**

हिन्दी मे अनुवाद

* किजीए सुपात्रदान, लिजीए फल महान * यशोदा * अहो वीरम्... महावीरम्... * माँ
* साधु-साध्वीजीओ की ऐसी अजोड भक्ति क्या आपने की है? * Miracle of Aura